इति द्वात्रिंशता वृत्तैः, परमात्मानमीक्षते।
योऽनन्यगत चेतस्को, यात्यसौ पदमव्ययम्।।३३।।

अर्थ– इस प्रकार जो अनन्यमनस्क होकर इस बत्तीस श्लोकों के द्वारा परमात्मा का ध्यान करता है, वह अव्यय पद को प्राप्त करता है।

●

श्री जिनसहस्त्रनाम स्तोत्रम

श्री भगवज्जिसेनाचार्य कृत

स्वयंभुवे नमस्तुभ्य-मुत्पाद्यात्मानमात्मनि।
स्वात्मनैव तथोद्भूत-वृत्तयेऽचिन्त्यवृत्तये।।१।।

अर्थ– हे भगवान्! आपने स्वयं अपने आत्मा को प्रगट किया है, इसलिए आप स्वयंभू अर्थात् अपने- आप उत्पन्न हुए कहलाते हैं। इसके सिवाय आपको आत्मवृत्ति अर्थात् आत्मा में ही तल्लीन होने योग्य चारित्र की प्राप्ति हुई है, तथा अचिंत्य माहात्म्य की प्राप्ति हुई है, इसलिए आपको मेरा नमस्कार हो।

नमस्ते जगतां पत्ये लक्ष्मी भर्त्रे नमोऽस्तु ते।
विदांवर ! नमस्तुभ्यं नमस्ते वदतांवर।।२।।

अर्थ– आप जगत के स्वामी हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो, आप अंतरंग बहिरंग लक्ष्मी के अधीश्वर हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो। आप विद्वानों में श्रेष्ठ हैं, तथा आप वक्ताओं में भी श्रेष्ठ हैं, इसलिए भी आपको हमारा नमस्कार हो।

कामशत्रुहणं देवमामनन्ति मनीषिणः।
त्वामानमत्सुरेणमौलि भा-मालाभ्यर्चितक्रमम्।।३।।

अर्थ– हे देव! बुद्धिमान लोग आपको कामदेव रूपी शत्रु को नाश करने वाला मानते हैं, और इन्द्र लोग भी अपने मुकुटों की कान्तिपुञ्ज से आपके चरण कमलों की पूजा करते हैं, इसलिए मैं भी आपकी स्तुति करता हूं।

ध्यान-दुर्घण-निर्भिन्न-घन-घाति-महातरुः।
अनन्त-भव-सन्तान-जयादासी-रनन्तजित्।।४।।

अर्थ– आपने अपने ध्यान-रूपी कुठार से बहुत कठोर घातिया कर्म-रूपी बड़े वृक्ष को काट डाला है तथा अनन्त जन्म मरण रूप संसार की सन्तान परम्परा को जीत लिया है, इसलिए आप 'अनन्तजित' कहलाते हैं।

त्रैलोक्य-निर्जयावाप्त- दुर्दर्पमतिदुर्जयम्।
मृत्युराजं विजित्यासीज्जिन! मृत्युंजयो भवान्।।५।।

अर्थ– हे जिन! तीनों लोकों को जीत लेने पर जिसे अत्यन्त अभिमान उत्पन्न हुआ है, तथा जो अन्य किसी से भी नहीं जीता जा सकता है, ऐसे मृत्युराज को भी आपने जीत लिया है, इसलिए आप ही 'मृत्युञ्जय' कहलाते हैं।

विधूताशेष-संसार-बन्धनो भव्य-बान्धवः।
त्रिपुरारिस्त्वमेवासि जन्म-मृत्युजरान्तकृत्।।६।।

अर्थ– आपने संसार रूपी समस्त बन्धन नष्ट कर दिये हैं, भव्य जीवों के आप बन्धु हैं, और आप ही जन्म, मरण तथा बुढ़ापा इन तीनों को नाश करने वाले हैं, इसलिए आप की 'त्रिपुरारि' हैं।

त्रिकाल-विषयाऽशेष-तत्त्वभेदात् त्रिधोत्थितम्।
केवलाख्यं दधच्चक्षुस्त्रिनेत्रोऽसि त्वमीशितः।।७।।

अर्थ– हे अधीश्वर! भूत भविष्यत् एवं वर्तमान तीनों कालों के समस्त तत्त्वों को एवं उनके तीन भेदों को जानने योग्य केवलज्ञान-रूप नेत्र को आप धारण करते हैं, इसलिए आप ही 'त्रिनेत्र' कहलाते हैं।

त्वामन्धकान्तकं प्राहुर्मोहान्धासुर-मर्दनात्।
अर्द्धं ते नारयो यस्मा-दर्धनारीश्वरोऽस्यतः।।८।।

अर्थ– आपने मोह-रूपी अन्धासुर का नाश किया है, इसलिए आप अन्धकान्तक कहलाते हैं, आठ कर्म रूपी शत्रुओं में से आपके आधे शत्रु अर्थात् चार घातिया कर्म नहीं हैं, इसलिए आप 'अर्धनारीश्वर' (अर्ध न अरि ईश्वर) कहलाते हैं।

शिवः शिवपदाध्यासाद् दुरितारि-हरो हरः।
शंकरः कृतशं लोके संभवस्त्वं भवन्सुखे।।९।।

अर्थ– आप शिवपद अर्थात् मोक्षस्थान में निवास करते हैं, इसलिए शिव कहे जाते हैं, पाप-रूपी शत्रुओं को नाश करने वाले हैं, इसलिए हर कहलाते हैं, जगत् को आनन्द देने वाले हैं, इसलिए शंकर कहलाते हैं और सुख से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए 'शम्भव' कहे जाते हैं।

वृषभोऽसि जगज्ज्येष्ठः पुरुः पुरुगुणोदयैः।
नाभेयो नाभि-संभूतेरिक्ष्वाकु-कुल-नन्दनः।।१०।।

अर्थ– जगत में श्रेष्ठ होने के कारण 'वृषभ' कहलाते हैं, बहुत से गुणों की खान होने से 'पुरु' कहे जाते हैं, महाराज नाभिराय

से आप उत्पन्न हुए हैं, इसलिए 'नाभेय' कहलाते हैं, और इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न हुए हैं इसलिए 'इक्ष्वाकु कुलनन्दन' कहे जाते हैं।

त्वमेकः पुरुषस्कन्धस्त्वं द्वे लोकस्य लोचने।
त्वं त्रिधा बुद्ध-सन्मार्गस्त्रिज्ञस्त्रिज्ञान-धारकः।।११।।

अर्थ– सब पुरुषों में आप ही एक श्रेष्ठ हैं, लोगों के दो नेत्र होने के कारण आप दो-रूप धारण करते हैं तथा आपने मोक्ष का मार्ग तीन-रूप से जाना है, अथवा भूत भविष्यत वर्तमान तीनों कालों के समस्त पदार्थों को एक साथ जानने वाले हैं, रत्नत्रय को धारण करने वाले हैं, इसलिए 'त्रिज्ञ' कहलाते हैं।

चतुःशरण-मांगल्यमूर्तिस्त्वं चतुरस्रधीः।
पंच-ब्रह्ममयो देव पावनस्त्वं पुनीहि माम्।।१२।।

अर्थ– आप अरहन्त सिद्ध साधु एवं केवली प्रणीत धर्म- ये चार शरण तथा मंगल रूप हैं, इसके अतिरिक्त आप चतुरस्रधी अर्थात् चारों दिशाओं के समस्त पदार्थों को जानने वाले कहलाते हैं। हे देव! आप ही पंच परमेष्ठी स्वरूप हैं, अतिशय पवित्र हैं, आप मुझे भी पवित्र कीजिए।

स्वर्गावतारिणे तुभ्यं सद्योजातात्मने नमः।
जन्माभिषेक-वामाय वामदेव नमोऽस्तु ते।।१३।।

अर्थ– हे भगवन् आप स्वर्गावतार के समय ही 'सद्योजात्' (अर्थात् उसी समय उत्पन्न होने वाले) कहलाये थे, इसलिए आपको नमस्कार हो। और जन्माभिषेक के समय बहुत ही सुन्दर दिखाई पड़ते थे, इसलिए हे वामदेव! आपको नमस्कार हो।

सन्निष्क्रान्तावघोराय परं प्रशममीयुषे।
केवलज्ञान-संसिद्धावीशानाय नमोऽस्तु ते।।१४।।

अर्थ– दीक्षा कल्याण के समय आपने परम शान्त मुद्रा धारण की थी तथा केवल-ज्ञान के समय आप परम पद को प्राप्त हुए, और ईश्वर कहलाये, इसलिए आपको नमस्कार हो।

पुरस्तत्पुरुषत्वेन विमुक्त-पद-भाजिने।
नमस्तत्पुरुषावस्थां भाविनीं तेऽद्य बिभ्रते।।१५।।

अर्थ– अब आगे शुद्ध आत्म स्वरूप के द्वारा मोक्ष-स्थान को प्राप्त होंगे एवं आगामी काल में सिद्ध अवस्था को धारण करने वाले होंगे इसलिए आपको आज ही मेरा नमस्कार हो।

ज्ञानावरण- निर्ह्रासान्नमस्तेऽनन्तचक्षुषे।
दर्शनावरणोच्छेदान्नमस्ते विश्वदृश्वने।।१६।।

अर्थ– ज्ञानावरण कर्म के नाश करने से आप 'अनन्तज्ञानी' कहलाते हैं तथा दर्शनावरण कर्म के नाश करने के कारण आप 'विश्वदृश्वा' अर्थात् समस्त देखने वाले कहलाते हैं। इसलिए हे देव! आपके लिए मेरा नमस्कार हो।

नमो दर्शमोहघ्ने क्षायिकाऽमलदृष्टये।
नमस्चारित्रमोहघ्ने विरागाय महौजसे।।१७।।

अर्थ– आप दर्शन मोहनीय के नाश करने वाले तथा निर्मल क्षायिक सम्यग्दर्शन को धारण करने वाले हैं, आप चारित्र मोहनीय कर्म को नाश करने वाले हैं, वीतराग और अतिशय तेजस्वी हैं, इसलिए आपको मेरा नमस्कार हो।

नमस्तेऽनन्त-वीर्याय नमोऽनन्त-सुखात्मने।
नमस्तेऽनन्त-लोकाय लोकालोकाविलोकिने।।१८।।

अर्थ– अनन्तवीर्य को धारण करने वाले आपको मेरा नमस्कार हो, अनन्तसुख को धारण करने वाले तथा लोकालोक को देखने वाले और अनन्त प्रकाश रूप आपको मेरा नमस्कार हो।

नमस्तेऽनन्त-दानाय नमस्तेऽनन्त-लब्धये।
नमस्तेऽनन्त-भोगाय नमोऽनन्तोपभोगिने।।१९।।

अर्थ– दानान्तराय कर्म के नाश होने से आपको अनन्त दान की प्राप्ति हुई है, इसलिए आपको नमस्कार हो, आप अनन्त लब्धियों को धारण करने वाले हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो, आप अनन्त भोग को धारण करने वाले हैं इसलिए आपको नमस्कार हो, तथा आप अनन्त उपभोग को धारण करने वाले हैं इसलिए आपको नमस्कार हो।

नमः परम-योगाय नमस्तुभ्यम् योनये।
नमः परम-पूताय नमस्ते परमर्षये।।२०।।

अर्थ– आप परम ध्यानी हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो, आप चौरासी लाख योनियों से रहित हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो, आप परम पवित्र हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो, और आप परम ऋषि व सर्वोत्कृष्ट मुनि हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो।

नमः परम-विद्याय नमः पर-मत-च्छिदे।
नमः परम-तत्त्वाय नमस्ते परमात्मने।।२१।।

अर्थ– आप परम विद्या अर्थात् केवलज्ञान को धारण करने वाले हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो, आप अन्य सब मतों का नाश करने

वाले हैं इसलिए आपको नमस्कार हो, आप परमतत्त्व स्वरूप हैं अर्थात् रत्नत्रय रूप हैं तथा आप ही सर्वोत्कृष्ट परमात्मा हैं, इसलिए आपको मेरा नमस्कार हो।

नमः परम-रूपाय नमः परम-तेजसे।
नमः परम-मार्गाय नमस्ते परमेष्ठिने।।२२।।

अर्थ– आप बहुत सुन्दर रूप को धारण करने वाले परम तेजस्वी हैं, इसलिए आपको मेरा नमस्कार हो, आप रत्नत्रय रूप होने के कारण साक्षात् मोक्षमार्ग स्वरूप हैं और आप परम स्थान में रहने वाले परमेष्ठी हैं, इसलिए आपको मेरा नमस्कार हो।

परमर्धिजुषे धाम्न परम-ज्योतिषे नमः।
नमः पारेतमः प्राप्तधाम्ने परतरात्मने।।२३।।

अर्थ– आप मोक्ष स्थान का सेवन करने वाले हैं, तथा ज्योति स्वरूप हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो, आप अज्ञान-रूपी अंधकार के पारंगत अर्थात् सर्वज्ञ है, और इसलिए ही प्रकाश रूप हैं तथा सर्वोत्कृष्ट हैं, इसलिए आपको मेरा नमस्कार हो।

नमः क्षीण-कलंकाय क्षीण-बन्ध नमोऽस्तु ते।
नमस्ते क्षीण-मोहाय क्षीण-दोषाय ते नमः।।२४।।

अर्थ– आप कर्म रूपी कलंक से रहित हैं, आप कर्मों के बन्धन से रहित हैं, आपका मोहनीय कर्म नष्ट हो गया है, तथा आप सब दोषों से रहित हैं, इन सब गुणों के लिए भी आपको नमस्कार हो।

नमः सुगतये तुभ्यं शोभनां गतिमीयुषे।
नमस्तेऽतीन्द्रिय-ज्ञान-सुखायाऽनिन्द्रियात्मने।।२५।।

अर्थ– आप मोक्ष- रूपी शुभगति को प्राप्त होने वाले 'शुभगति' हैं आप अतीन्द्रिय (जो इन्द्रियों से न जाना जाय) ज्ञान-सुख को धारण करने वाले हैं, तथा स्वयं इन्द्रियों के अगोचर अतींद्रिय हैं, इसलिए आपको मेरा नमस्कार हो।

काय-बन्धन-निर्मोक्षा-दकायाय नमोऽस्तु ते।
नमस्तुभ्य-मयोगाय योगिनामधियोगिने ।।२६।।

अर्थ– आप 'शरीर बन्धन- नामक' नाम-कर्म को नष्ट करने के कारण ही 'शरीर रहित' कहलाते हैं, आप मन, वचन, काय के योगों से रहित हैं, और योगियों में भी सर्वोत्कृष्ट हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो।

अवेदाय नमस्तुभ्यमकषायाय ते नमः।
नमः परम-योगीन्द्र-वन्दिताङ्घ्रि-द्वयाय ते।।२७।।

अर्थ– आप स्त्री- पुरुष- नपुंसक तीनों वेदों से रहित हैं, और आप 'कषाय रहित' हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो, परम योगिराज भी आपके दोनों चरणकमलों को नमस्कार करते हैं, इसलिए भी आपको नमस्कार हो।

नमः परम-विज्ञान नमः परम-संयम।
नमः परमदृग्दृष्ट-परमार्थाय ते नमः।।२८।।

अर्थ– हे 'परम विज्ञान'! उत्कृष्ट ज्ञान को धारण करने वाले, आपके लिए मेरा नमस्कार हो, 'परमसंयम' अर्थात् उत्कृष्ट चरित्र को धारण करने वाले हे देव! आप 'परम दृष्टि' से परमार्थ को देखने वाले हैं तथा जगत की रक्षा करने वाले हैं, इसलिए आपको मेरा नमस्कार है।

नमस्तुभ्यम् लेश्याय शुक्ल-लेश्यांशक-स्पृशे।
नमो भव्येतरावस्था-व्यतीताय विमोक्षिणे।।२९।।

अर्थ– आप लेश्याओं से रहित तथापि शुद्ध शुक्ललेश्या के कुछ उत्तम अंशों को स्पर्श करने वाले हैं इसलिए आपको नमस्कार हो, आप भव्य अभव्य दोनों अवस्थाओं से रहित हैं और मुक्त रूप हैं इसलिए भी आपको नमस्कार हो।

संज्ञ्यसंज्ञिद्वयावस्था-व्यति रिक्तामलात्मने।
नमस्ते वीतसंज्ञाय नमः क्षायिकदृष्टये।।३०।।

अर्थ– आप सैनी असैनी दोनों अवस्थाओं से रहित हैं, निर्मल शुद्ध आत्मा को धारण करने वाले हैं तथा आहार, भय, मैथुन और परिग्रह चारों संज्ञाओं से रहित हैं इसलिए आपको हमारा नमस्कार हो इसके अतिरिक्त आप क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं इसलिए भी मैं आपको नमस्कार करता हूं।

अनाहाराय तृप्ताय नमः परमभाजुषे।
व्यतीताशेषदोषाय भवाब्धेः पारमीयुषे।।३१।।

अर्थ– आप आहार रहित होकर भी सदा तृप्त रहते हैं अतिशय कांतियुत हैं, समस्त दोषों से रहित हैं और संसाररूपी समुद्र के पार हैं इसलिए आपको हमारा नमस्कार हो।

अजराय नमस्तुभ्यं नमस्तेस्तीदजन्मने।
अमृत्यवे नमस्तुभ्यमचलायाऽक्षरात्मने।।३२।।

अर्थ– आप जरा रहित हैं आप जन्म रहित हैं, आप मृत्यु रहित हैं तथा अचल और अविनश्वर हैं इसलिए भी आपको हमारा नमस्कार हो।

अलमास्तां गुणस्तोत्रमनन्तास्तावका गुणाः।
त्वां नाम स्मृति-मात्रेण पर्युपासिसिषामहे।।३३।।

अर्थ– हे देव! आपके अनन्तगुण हैं, सबका वर्णन असम्भव है इसलिए अब आपके गुणों का वर्णन न कर केवल आप के नामों का ही स्मरण करके आपकी उपासना करना चाहते हैं।

एवं स्तुत्वा जिनं देवं भक्त्या परमया सुधीः।
पठेदष्टोत्तरं नाम्नां सहस्रं पाप-शान्तये।।३४।।

अर्थ– इस प्रकार उत्कृष्ट भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र देव की स्तुति करके सुधीजन पापों की शान्ति के लिए एक हजार आठ नामों को निरन्तर पढ़ें।

इति प्रस्तावना।

प्रसिद्धाष्ट-सहस्रेद्ध-लक्षणं त्वां गिरां पतिम्।
नाम्नामष्टसहस्रेण तोष्टुमोऽभीष्ट-सिद्धये।।१।।

अर्थ– आप समस्त वाणियों के स्वामी हैं, आपके एक हजार आठ लक्षण प्रसिद्ध हैं, इसलिए हम लोग भी अपनी इष्ट सिद्धि के लिए एक हजार आठ नामों से आपकी स्तुति करते हैं।

श्रीमान्स्वयंभूर्वृषभः शंभवः शंभुरात्मभूः।
स्वयंप्रभः प्रभुर्भोक्ता विश्वभूरपुनर्भवः।।२।।

अर्थ– आप अनन्त चतुष्टय-रूप अन्तरंग लक्ष्मी और समवसरण रूप बहिरंग लक्ष्मी से सुशोभित हैं इसलिए 'श्रीमान' (१) कहलाते हैं। अपने आप उत्पन्न हुए हैं अथवा बिना गुरु के ही अपने आप समस्त पदार्थों के जानने वाले हैं, अथवा अपने ही आत्मा में रहते हैं, अथवा

आपने अपने आप ही कल्याण किया है, (अथवा) अपने ही गुणों से आप वृद्धि को प्राप्त हुए हैं) अपने आप केवल ज्ञान और केवलदर्शन के द्वारा समस्त लोकालोक में व्याप्त हो रहे हैं वा भव्य जीवों को मोक्ष रूप सम्पत्ति देने वाले हैं, वा द्रव्य पर्यायों को अपने आप जानते हैं, अथवा ध्यान करने वाले योगियों को आप प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं, अथवा लोकशिखर पर अपने आप जाकर, विराजमान होते हैं इसलिए आप 'स्वयंभू' (२) कहलाते हैं। आप वृष अर्थात् धर्म से 'भा' अर्थात् सुशोभित रहते हैं अथवा धर्म की वर्षा करते हैं अथवा भक्त लोगों को इष्टवस्तु की वर्षा करने वाले हैं, इसलिए 'वृषभ' (३) कहलाते हैं। आप से सब जीवों को सुख मिलता है, अथवा आपका 'भव' अर्थात् जन्म अत्यन्त ही उत्कृष्ट है, अथवा आप सुखपूर्वक उत्पन्न हुए हैं, इसलिए 'शंभव वा 'संभव' (४) कहलाते हैं। आप परमानन्द मोक्ष- रूप सुख को देने वाले हैं, इसलिए 'शंभु' (५) कहलाते हैं। आप अपने आत्मा के द्वारा ही कृतकृत्य हुए हैं, अथवा शुद्ध-बुद्ध चित्चमत्कार स्वरूप आत्मा में ही रहते हैं, अथवा ध्यान के द्वारा योगियों की आत्मा में ही प्रत्यक्ष होते हैं, इसलिए 'आत्मभू' (६) कहे जाते हैं। आप अपने आप ही प्रकाशमान होते हैं, अथवा शोभायमान होते हैं, इसलिए 'स्वयंप्रभ' (७) कहलाते हैं। सबके स्वामी हैं वा समर्थ हैं, इसलिए 'प्रभु' (८) हैं। परमानन्द स्वरूप सुख का उपभोग करने वाले हैं, इसलिए 'भोक्ता' (९) हैं। केवलज्ञान के द्वारा सब जगह व्याप्त हैं, वा समस्त लोक में मंगल करने वाले हैं, अथवा ध्यानादि के द्वारा समस्त लोक में प्रत्यक्ष प्रगट होते हैं, अथवा समस्त लोकालोक को जानने वाले हैं, इसलिए 'विश्वभू' (१०) हैं। आपका जन्म मरण रूप संसार बाकी नहीं है, वा अब आप संसार में उत्पन्न नहीं होंगे, इसलिए ही आपको 'अपुनर्भव' (११) कहते हैं।

विश्वात्मा विश्वलोकेशो विश्वतश्चक्षुरक्षरः।
विश्वविद्विश्वविद्येशो विश्वयोनि-रनश्वरः।।३।।

अर्थ– आप समस्त लोक को अपने समान जानते हैं, अथवा आप विश्व अर्थात् केवलज्ञान स्वरूप हैं, इसलिए 'विश्वात्मा' (१२) कहे जाते हैं, तीनों लोकों में रहने वाले समस्त प्राणियों के आप स्वामी हैं, इसलिए 'विश्वलोकेश' (१३) हैं। आपके चक्षु अर्थात् केवलदर्शन समस्त जगत् में व्याप्त हैं, इसलिए 'विश्वतश्चक्षु' (१४) हैं। कभी नाश नहीं होते, इसलिए 'अक्षय' (१५) हैं। छः द्रव्यों से भरे हुए इस विश्व अर्थात् जगत् को जानते हैं, इसलिए 'विश्ववित्' (१६) हैं। समस्त विद्याओं के ईश्वर हैं, अथवा केवल ज्ञान के स्वामी हैं, अथवा समस्त विद्याओं के जानने वाले गणधरादिकों के स्वामी हैं, इसलिए 'विश्वविद्येश' (१७) कहे जाते हैं। समस्त पदार्थों की उत्पत्ति के कारण हैं, अर्थात् सब पदार्थों को उपदेश देने वाले हैं, इसलिए 'विश्वयोनि' (१८) कहलाते हैं। आपके स्वरूप का कभी विनाश नहीं होता, इसलिए 'अविनश्वर' (१९) कहे जाते हैं।

विश्वदृश्वा विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः।
विश्वव्यापी विधिर्वेधाः शाश्वतो विश्वतोमुखः।।४।।

अर्थ– समस्त लोक अलोक को देखने से 'विश्वदृश्वा' (२०) कहलाते हैं, केवलज्ञान के द्वारा सब जगह व्याप्त हैं, अथवा जीवों को संसार से पार करने में समर्थ हैं, अथवा परम विभूति संयुक्त हैं, इसलिए आप को 'विभु' (२१) कहते हैं। चारों गतियों में परिभ्रमण करने वाले जीवों का उद्धार कर मोक्ष-स्थान में पहुंचाने वाले हैं, अथवा दयालु होने से सब जीवों की रक्षा करने वाले हैं, इसलिए 'धाता' (२२) कहलाते हैं। समस्त जगत् के स्वामी होने से 'विश्वेश'

(२३) कहे जाते हैं, समस्त जीवों को सुख की प्राप्ति का उपाय दिखलाया है, इसलिए सब जीवों के नेत्रों के समान होने से 'विश्वलोचन' (२४) कहलाते हैं। केवलज्ञान के द्वारा समस्त लोकालोक में व्याप्त हैं, अथवा केवलिसमुद्घात करते समय आपके आत्मा के प्रदेश समस्त लोकाकाश में व्याप्त हो जाते हैं, इसलिए आपको 'विश्वव्यापी' (२५) कहते हैं। कर्मों का नाश करने वाले हैं, अथवा केवलज्ञान रूपी किरणों के द्वारा मोह- रूपी अन्धकार को नाश करने वाले हैं, इसलिए 'विधु' (२६) कहे जाते हैं, धर्म-रूप जगत् को उत्पन्न करने वाले हैं, इसलिए 'वेधा' (२७) कहलाते हैं। नित्य हैं, सदा विद्यमान रहते हैं, इसलिए 'शाश्वत' (२८) कहे जाते हैं। आपके मुख चारों दिशाओं में दिखते हैं अथवा आपके मुख के दर्शन करने मात्र से ही जीवों की चतुर्गति नष्ट हो जाती हैं, इसलिए अथवा जैसे- विश्वतोमुख नाम जल का है, एवं आप जल के समान कर्म-रूप मल को धोने वाले हैं, विषयों की तृष्णा को नष्ट करने वाले और अत्यन्त स्वच्छ हैं, इसलिए आप -'विश्वतोमुख' (२९) कहलाते हैं।

विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः।
विश्वदृग् विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः।।५।।

अर्थ– आपके मतानुसार समस्त कर्म ही दुःख देने वाले हैं अथवा आपने जीविका के लिए छह कर्मों का उपदेश दिया है, इसलिए आपको 'विश्वकर्मा' (३०) कहते हैं। जगत के समस्त प्राणियों में आप वृद्ध हैं, अथवा श्रेष्ठ हैं इसलिए 'जगज्ज्येष्ठ' (३१) कहलाते हैं। आप अनंत गुणमय हैं इसलिए 'विश्वमूर्ति' (३२) कहलाते हैं। समस्त अशुभ कर्मों के नाश करने के कारण गणधर देवों को तथा चौथे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक रहने वाले जीवों को जिन कहते हैं, आप

जिनों के ईश्वर हैं इसलिए आपको 'जिनेश्वर' (३३) कहते हैं। समस्त जगत को देखते हैं इसलिए 'विश्वदृक्' (३४) कहलाते हैं, तथा समस्त प्राणियों के ईश्वर होने के कारण एवं आप तीनों लोकों की लक्ष्मी के स्वामी हैं इसलिए 'विश्वभूतेश' (३५) कहे जाते हैं। आपका केवलदर्शनरूपी तेज सब जगह भरा हुआ है अथवा आप समस्त जगत् को प्रकाश देने वाले हैं, इसलिए 'विश्वज्योति' (३६) कहलाते हैं। आपका कोई ईश्वर अथवा स्वामी नहीं है। इसलिए आपको 'अनीश्वर' (३७) कहते हैं।

जिनो जिष्णुरमेयात्मा विश्वरीशो जगत्पतिः।
अनन्तचिदचिन्त्यात्मा भव्यबन्धुरबन्धनः।।६।।

अर्थ– आपने कर्मरूपी शत्रु अथवा काम, क्रोध, रागद्वेष आदि शत्रुओं को जीता है इसलिए 'जिन' (३८) कहलाते हैं। आपका स्वभाव ही सबसे उत्कृष्ट किंवा प्रकाश रूप है, इसलिए 'जिष्णु' (३९) कहे जाते हैं। आपका ज्ञान प्रमाण रहित अनंत है इसलिए आप 'अमेयात्मा' (४०) कहलाते हैं।। विश्वरी अर्थात् पृथ्वी के ईश अर्थात् स्वामी हैं इसलिए आप 'विश्वरीश' (४१) कहलाते हैं। आप तीनों लोकों के स्वामी हैं इसलिए 'जगत्पति' (४२) कहे जाते हैं तथा अनंत संसार को जीतने वाले हैं इसलिए 'अनंतजित' (४३) कहे जाते हैं। आपके आत्मा का स्वरूप मन से चिंतवन करने तक की शक्ति अन्य प्राणियों में नहीं है इसलिए आपको 'अचिंतकाय' (४४) कहते हैं। भव्य जीवों का आप सदा उपकार करते हैं इसलिए 'भव्यबन्धु' (४५) कहलाते हैं, तथा पाप के कर्म का बन्ध नहीं हैं अर्थात् घातिया कर्मों के द्वारा आप बधे हुए नहीं हैं इसलिए आप 'अबंधन' (४६) कहे जाते हैं।

युगादिपुरुषो ब्रह्मा पंचब्रह्ममयः शिवः।
परः परतरः सूक्ष्मः परमेष्ठी सनातनः।।७।।

अर्थ– आप कर्मभूमि के प्रारम्भ में उत्पन्न हुए हैं, इसलिए 'युगादिपुरुष' (४७) कहलाते हैं। आपके यहां केवलज्ञान आदि समस्त गुण वृद्धि को प्राप्त होते हैं, इसलिए 'ब्रह्मा' (४८) कहे जाते हैं पंचपरमेष्ठी स्वरूप होने के कारण 'पंचब्रह्ममय' (४९) कहलाते हैं। सदा परमानंद में रहते हैं तथा सबका कल्याण करने वाले हैं, इसलिए आपको -'शिव' (५०) कहते हैं। आप जीवों को मोक्षस्थान में पहुंचाते हैं इसलिए 'पर' (५१) कहे जाते हैं तथा धर्मोपदेशक एवं सबसे श्रेष्ठ हैं इसलिए 'परतर' (५२) कहलाते हैं। इन्द्रियों के द्वारा आप जाने नहीं जा सकते, केवल ज्ञान के द्वारा जाने जाते हैं, इसलिए 'सूक्ष्म (५३) कहलाते हैं, तथा इन्द्रादिकों के द्वारा पूज्य मोक्षस्थान में अरहंत पद में रहते हैं, इसलिए 'परमेष्ठी' (५४) कहलाते हैं और तीनों कालों में आप नित्य रहते हैं, इसलिए 'सनातन' (५५) कहे जाते हैं।

स्वयंज्योतिरजोऽजन्मा ब्रह्मयोनिरयोनिजः।
मोहारिविजयी जेता धर्मचक्री दयाध्वजः।।८।।

अर्थ– आप स्वयं प्रकाशरूप हैं, इसलिए 'स्वयंज्योति' (५६) हैं, संसार में उत्पन्न नहीं होते इसलिए 'अज' (५७) हैं, कभी शरीर धारण नहीं करते इसलिए 'अजन्मा' (५८) हैं, ब्रह्म अर्थात् सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र की योनि अर्थात् खानि हैं इसलिए 'ब्रह्मयोनि' (५९) कहे जाते हैं। मोक्षस्थान में चौरासी लाख योनियों से रहित होकर उत्पन्न होते हैं इसलिए 'अयोनिज' (६०) कहलाते हैं। आप मोहनीय कर्मरूपी शत्रु को जीतने वाले हैं, इसलिए 'मोहारिविजयी' (६१) सबसे उकृष्ट रीति से रहने से 'जेता' (६२)

सदा आपके आगे धर्म चक्र चलता रहता है, इसलिए 'धर्मचक्री' (६३) तथा आपकी प्रसिद्ध ध्वजा फहराकर सब प्राणियों पर दया करना सिखाती है, इसलिए आप 'दयाध्वज' (६४) कहलाते हैं।

प्रशान्तारि रनन्तात्मा योगी योगीश्वरार्चितः।
ब्रह्मविद् ब्रह्मतत्त्वज्ञो ब्रह्मोद्याविद्यतीश्वरः।।९।।

अर्थ– आपके कर्मरूपी शत्रु शांत हो गये हैं इसलिए 'प्रशांतारि' (६५) अनंत गुणों को धारण करने वाले हैं, तथा आपका ज्ञान कभी नष्ट नहीं होता, आप केवलज्ञानी हैं इसलिए आप 'अनंतात्मा' (६६) कहे जाते हैं। आपने अपने योगों को निरोध किया है। इसलिए 'योगी' (६७) गणधरादि योगीश्वर भी आपकी पूजा करते हैं इसलिए 'योगीश्वरार्चित' (६८) अपने ब्रह्म अर्थात् आत्मा का स्वरूप जानने के कारण 'ब्रह्मवित' (६९) तथा ब्रह्मतत्त्व अर्थात् आत्मतत्त्व का अथवा केवलज्ञान का वा दया का अथवा कामदेव के नष्ट करने का मर्म जानते हैं, इसलिए 'ब्रह्मतत्वज्ञ' (७०) कहे जाते हैं। ब्रह्म अर्थात् आत्मा के समस्त तत्त्वों को अथवा आत्मविद्या को जानने के कारण 'ब्रह्मोद्यावित' (७१), तथा रत्नत्रय सिद्ध करने वाले यतियों में भी श्रेष्ठ हैं इसलिए 'यतीश्वर' (७२) कहे जाते हैं।

शुद्धो बुद्धः प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थः सिद्धशासनः।
सिद्धः सिद्धान्तविद् ध्येयः सिद्धसाध्यो जगद्धितः।।१०।।

अर्थ– क्रोधादि कषायों से रहित होने से 'शुद्ध' (७३) केवलज्ञानी होने से अथवा सबको जानने से 'बुद्ध' (७४) आत्मा का स्वरूप जानने के कारण हैं इसलिए 'प्रबुद्धात्मा' (७५), तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष चारों पुरुषार्थों को सिद्ध करने के कारण अथवा मोक्ष प्राप्ति ही मुख्य उद्देश्य के कारण अथवा जीवादि पदार्थों की सिद्धि

के कारण अथवा मोक्ष के कारण रत्नत्रय को सिद्ध करने के कारण आपको 'सिद्धार्थ' (७६) कहते हैं। आपका शासन अर्थात् मत पूर्ण वा प्रसिद्ध है, इसलिए आप 'सिद्धशासन' (७७) कहे जाते हैं तथा कर्मों का नाश करने से 'सिद्ध' (७८) कहलाते हैं। आप द्वादशांग सिद्धांत के पारगामी हैं इसलिए 'सिद्धांतवित' (७९) योगी लोगों के ध्यान योग्य होने ये 'ध्येय' (८०) हैं, तथा मुनियों द्वारा आराध्य होने से अथवा सिद्ध जाति के देव द्वारा पूज्य होने से 'सिद्धसाध्य' (८१) कहे जाते हैं। आप जगत का हित अथवा उपकार करते हैं इसलिए आपको 'जगद्धित' (८२) कहते हैं।

सहिष्णु-रच्युतोऽनन्तः प्रभविष्णुर्भवोद्भवः।
प्रभूष्णुरजरोऽजर्यो भ्राजिष्णु र्धीश्वरोऽव्ययः।।११।।

अर्थ– सहनशील होने से 'सहिष्णु' (८३) हैं, आत्मा के स्वरूप से कभी च्युत नहीं होते इसलिए 'अच्युत' (८४) हैं, आपके गुणों का अन्त नहीं इसलिए 'अनन्त' (८५) हैं, आपमें अनन्त शक्ति है इसलिए 'प्रभविष्णु' (८६) हैं, आपका सांसारिक जन्ममरण नष्ट हो गया तथा संसार में आपका जन्म उत्कृष्ट है इसलिए आप 'भवोद्भव' (८७) हैं। अपनी स्वाभाविक परिणति से समय समय में परिणत अथवा सौ इन्द्रों की प्रभुता का आपका स्वभाव है, इसलिए 'प्रभूष्णु' (८८) कहलाते हैं। जरा अर्थात् बुढापारहित हैं इसलिए 'अजर' (८९), कोई भी आपको जीत नहीं सकता इसलिए 'अजेय' (९०), करोड़ों सूर्य चन्द्रमा की कांति से अधिक आपकी कांति है इसलिए 'भ्राजिष्ण' (९१) पूर्ण ज्ञान के स्वामी होने के कारण 'धीश्वर' (९२) हैं, सदा अविनश्वर, न कम न अधिक होने के कारण 'अव्यय' (९३) कहलाते हैं।

विभावसुरसंभूष्णुः स्वयंभूष्णुः पुरातनः।
परमात्मा परंज्योति-स्त्रिजगत्परमेश्वरः।।१२।।

अर्थ– कर्मरूपी ईंधन को जलाने से 'विभावसु' अर्थात् 'अग्नि', मोहरूपी अंधकार को नाश करने से 'विभावसु' अर्थात् सूर्य, धर्मरूपी अमृत की वर्षा करने से 'विभावसु' अर्थात् 'चन्द्र', अथवा रागद्वेष आदि विभाव परिणामों को आपने नाश किया है इसलिए भी 'विभावसु' (९४) कहे जाते हैं। संसार में उत्पन्न होना आपका स्वभाव नहीं है, इसलिए 'असंभूष्ण' (९५) हैं, अपने आप ही प्रगट अर्थात् प्रकाश हुए हैं इसलिए 'स्वयंभूष्णु' (९६) अनादि सिद्ध हैं इसलिए 'पुरातन' (९७) आत्मा के परमोत्कृष्ट होने के कारण 'परमात्मा' (९८), मोक्षमार्ग को प्रगट करने वाले हैं इसलिए 'परमज्योति' (९९) और तीनों लोकों में आप उत्कृष्ट हैं अथवा तीनों लोकों के स्वामी होने के कारण आप 'त्रिजगत्परमेश्वर' (१००) कहलाते हैं।

इति श्रीमदादिशतम्।।१।।

दिव्यभाषापतिर्दिव्यः पूतवाक्पूतशासनः।
पूतात्मा परमज्योतिर्धर्माध्यक्षो दमीश्वरः।।१।।

अर्थ– दिव्यध्वनि के स्वामी हैं, इसलिए 'दिव्यभाषापति' (१०१), अतिशय मनोहर होने से 'दिव्य' (१०२), वाणी निर्दोष होने के कारण 'पूतवाक्' (१०३), तथा उपदेश वा मत पवित्र होने से 'पूतशासन' (१०४) कहलाते हैं। आपकी आत्मा पवित्र है, अथवा आप भव्यजीवों को पवित्र करते हैं इसलिए 'पूतात्मा' (१०५) हैं, आपका केवलज्ञानरूपी तेज सर्वोत्कृष्ट है इसलिए 'परमज्योति' (१०६) हैं, धर्म के अधिकारी हैं इसलिए 'धर्माध्यक्ष' (१०७) हैं, और इन्द्रियों के निग्रह करने में श्रेष्ठ हैं इसलिए 'दमीश्वर' (१०८) हैं।

श्रीपतिर्भगवानर्हन्नरजा विरजाः शुचिः।
तीर्थकृत्केवलीशानः पूजार्हः स्नातकोऽमलः।।२।।

अर्थ– मोक्षादि लक्ष्मी के भोक्ता व स्वामी होने से 'श्रीपति' (१०९), महाज्ञानी होने से 'भगवान्' (११०) हैं, परम पूज्य होने से तथा सबके द्वारा आराधित होने से 'अर्हन्' (१११), कर्मरूपी रज-रहित होने से 'अरजा' (११२), एवं भव्यजीवों के कर्ममूल दूर करने में सहायक होने से अथवा पापरूप ज्ञानावरण, दर्शनावरणरहित होने से 'विरजा' (११३) कहे जाते हैं, परम पवित्र, पूर्ण ब्रह्मचर्य को पालन करने वाले मल मूत्र रहित, मोहरहित हैं अतएव 'शुचि' (११४) हैं। धर्मरूप तीर्थ के कर्ता अथवा संसार से पार करने वाले द्वादशांगरूप तीर्थ के कर्त्ता हैं, इसलिए तीर्थकृत' (११५) हैं, केवलज्ञानी होने से 'केवली' (११६), अनंत शक्तिमान किंवा सबके ईश्वर होने से 'ईशान' (११७), आठ प्रकार की पूजा के योग्य होने से 'पूजार्ह' (११८), घातिया कर्मों के नष्ट होने से, पूर्ण ज्ञान होने से 'स्नातक' (११९) और धातु उपधातु आदि मलरहित होने से 'अमल' (१२०) कहे जाते हैं।

अनन्तदीप्तिर्ज्ञानात्मा स्वयंबुद्धः प्रजापतिः।
मुक्तः शक्तो निराबाधो निष्कलो भुवनेश्वरः।।३।।

अर्थ– आपकी केवलज्ञानरूपी दीप्ति अनंत है, आपके शरीर की कांति अनंत है, इसलिए आपको 'अनंतदीप्ति' (१२१) कहते हैं, ज्ञानस्वरूप होने से 'ज्ञानात्मा' (१२२), स्वयं ही मोक्षमार्ग में प्रवृत्त हुए हैं, बिना गुरु के स्वयं महाज्ञानी हुए हैं, इसलिए 'स्वयंबुद्ध' (१२३), तीनों लोकों के स्वामी हैं और सबको उपदेश देते हैं, इसलिए 'प्रजापति' (१२४) हैं, संसार और कर्मों से रहित होने से 'मुक्त'

(१२५) हैं, समर्थ होने से अथवा अनंत शक्ति के धारक होने से 'शक्त' (१२६), बाधारहित होने से व दुःखरहित होने से 'निराबाध' (१२७) शरीर रहित होने से 'निष्कल' (१२८), और तीनों लोकों के स्वामी होने से 'भुवनेश्वर' (१२९) कहलाते हैं।

निरंजनो जगज्ज्योति-र्निरुक्तोक्तिर्निरामयः।
अचलस्थितिरक्षोभ्यः कूटस्थः स्थाणुरक्षयः।।४।।

अर्थ– कर्मरूपी अंजन से रहित होने से 'निरंजन' (१३०), जगत को प्रकाशित करने से अथवा मोक्षमार्ग का स्वरूप दिखलाने से 'जगज्ज्योति' (१३१), वचन पूर्वा पर अविरुद्ध प्रमाण होने से आपको 'निरुक्तोक्ति' (१३२) कहते हैं। रोग रहित अथवा पसीना रहित होने से 'अनामय' (१३३), अनन्त काल बीतने पर भी आप अचल रहते हैं, इसलिए 'अचलस्थिति' (१३४) हैं, व्याकुलतारहित होने से अथवा आपकी शान्ति का कभी भंग न होने से आप 'अक्षोभ्य' (१३५) कहलाते हैं। सदा नित्य रहने से अथवा लोकशिखर पर विराजमान होने से 'कूटस्थ' (१३६) कहे जाते हैं तथा गमनागमन रहित होने से 'स्थानु' (१३७) एवं क्षय रहित होने से 'अक्षय' (१३८) कहलाते हैं।

अग्रणीर्ग्रामणीर्नेता प्रणेता न्यायशास्त्रकृत्।
शास्ता धर्मपतिर्धर्म्यो धर्मात्मा धर्मतीर्थकृत्।।५।।

अर्थ– तीनों लोकों में मुख्य होने से 'अग्रणी' (१३९), मोक्षपद को प्राप्त होने से 'ग्रामणी' (१४०), तथा समस्त प्रजा को धर्म के अनुसार चलाने से 'नेता' (१४१), तथा शास्त्र को उत्पन्न करने वाले, किंवा धर्म वा मोक्ष मार्ग का उपदेश देने वाले होने के कारण 'प्रणेता' (१४२) कहे जाते हैं। प्रमाण और नयों के स्वरूप- द्रष्टा शास्त्रों के वक्ता हैं, इसलिए 'न्यायशास्त्रकृत' (१४३) कहलाते हैं,

सबको हितोपदेश देने के कारण 'शास्ता' (१४४), तथा रत्नत्रय धर्म के अथवा उत्तम क्षमा आदि धर्मों के स्वामी होने से 'धर्मपति' (१४५) कहलाते हैं। धर्म स्वरूप होने से आप 'धर्म्य' (१४६) धर्म की वृद्धि करने से 'धर्मात्मा' (१४७), और धर्मरूप तीर्थकी प्रवृत्ति करने से 'धर्मतीर्थकृत' (१४८) कहलाते हैं।

वृषध्वजो वृषाधीशो वृषकेतुर्वृषायुधः।
वृषो वृषपतिर्भर्ता वृषभांको वृषोद्भव।।६।।

अर्थ– आपकी ध्वजा पर बैल का चिन्ह होने से अथवा वृष अर्थात् धर्म की ध्वजा फहराने से 'वृषध्वज' (१४९) अहिंसारूप धर्म के स्वामी होने से 'वृषाधीश' (१५०), धर्म को प्रसिद्ध करने से 'वृषकेतु' (१५१), तथा कर्मरूप शत्रु को नाश करने के लिए आपने धर्मरूपीशस्त्र धारण कर रखा है, इसलिए 'वृषायुध' (१५२) कहलाते हैं। धर्म की वृष्टि करने से 'वृष' (१५३), धर्म के नायक होने से 'वृषपति' (१५४), सबके स्वामी होने से 'भर्ता' (१५५) तथा बैल का चिन्ह होने से 'वृषभांक' (१५६) कहलाते हैं। माता के स्वप्न में वृषभ देखने से एवं उपरांत आप उत्पन्न हुए हैं अथवा महापुण्य से उत्पन्न हुए हैं इसलिए 'वृषोद्भव' (१५७) कहलाते हैं।

हिरण्यनाभिर्भूतात्मा भूतभृद् भूतभावनः।
प्रभवो विभवो भास्वान् भवो भावो भवान्तकः।।७।।

अर्थ– सुन्दर नाभि होने से अथवा नाभिराज की संतति होने से 'हिरण्यनाभि' (१५८), यथार्थ स्वरूप एवं अविनाशी होने से 'भूतात्मा' (१५९), जीवों की रक्षा करने से अथवा कल्याण करने से 'भूतभृत्' (१६०), तथा भावना के सदा मंगलस्वरूप होने से आप 'भूतभावन' (१६१) कहलाते हैं। आपका जन्म प्रशंसनीय है, आपसे

आपके वंश की वृद्धि हुई है, इसलिए 'प्रभव' (१६२), संसार रहित होने से 'विभव' (१६३), तथा केवलज्ञानरूपी कांति से प्रकाशमान होने से 'भास्वान्' (१६४) कहलाते हैं। समय समय में आपमें उत्पाद होता रहता है इसलिए 'भव' (१६५), आत्म स्वभाव में सदा लीन होने से 'भाव' (१६६), तथा भव अर्थात् संसार- परिभ्रमण का नाश करने वाले होने से 'भवांतक' (१६७) कहलाते हैं।

हिरण्यगर्भः श्रीगर्भः प्रभूतविभवोऽभवः।
स्वयंप्रभुः प्रभूतात्मा भूतनाथो जगत्पति।।८।।

अर्थ– गर्भावतार के समय सुवर्ण की वृष्टि होने से 'हिरण्यगर्भ' (१६८), गर्भावतार के समय लक्ष्मी द्वारा आपकी माता की सेवा होने से अथवा आपके अंतरंग में स्फुरायमान लक्ष्मी शोभायमान है, इसलिए आपको 'श्रीगर्भ' (१६९) कहते हैं। अनन्त विभूति के स्वामी होने से 'प्रभूतविभव' (१७०), जन्मरहित होने से 'अभव' (१७१), तथा समर्थ होने से 'स्वयंप्रभु' (१७२) कहलाते हैं। केवलज्ञान के द्वारा आत्मा व्याप्त होने से 'प्रभूतात्मा' (१७३), समस्त जीवों के स्वामी होने से 'भूतनाथ' (१७४) और तीनों लोकों के स्वामी होने से 'जगत्पति' (१७५) कहे जाते हैं।

सर्वादिः सर्वदृक् सार्वः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः।
सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्ववित्सर्वलोकजित्।।९।।

अर्थ– सबसे प्रथम एवं श्रेष्ठ होने से 'सर्वादि' (१७६), समस्त लोकालोक को देखने से 'सर्वदृक्' (१७७), हितोपदेश देकर सबका कल्याण करने से 'सार्व' (१७८), तथा सबको जानने से 'सर्वज्ञ' (१७९) कहे जाते हैं। सम्यक्त्व को धारण करने से 'सर्वदर्शन' (१८०), सर्व प्रिय होने से 'सर्वात्मा' (१८१), तीनों लोकों के जीवों

के स्वामी होने से 'सर्वलोकेश' (१८२) समस्त पदार्थों के ज्ञाता होने से 'सर्ववित्' (१८३) तथा अनन्तवीर्य एवं समस्त लोक को जीतने वाले होने के कारण 'सर्वलोकजित्' (१८४) कहलाते हैं।

सुगतिः सुश्रुतः सुश्रुत् सुवाक् सूरिर्बहुश्रुतः।
विश्रुतः विश्वतः पादो विश्वशीर्षः शुचिश्रवाः।।१०।।

अर्थ– आप की पंचम मोक्षगति अतिशय सुन्दर होने से अथवा आपका ज्ञान प्रशंसनीय होने से 'सुगति' (१८५), अत्यन्त प्रसिद्ध होने से अथवा उत्तम शास्त्रज्ञान को धारण करने से 'सुश्रुतः' (१८६), भक्तों की प्रार्थना अच्छी तरह सुनने के कारण 'सुश्रुत' (१८७) वाणी सप्तभंग- स्वरूप होने से अथवा हितोपदेश देने से 'सुवाक्' (१८८), सबके गुरु होने से 'सूरि' (१८९), तथा शास्त्रों के पारगामी होने से 'बहुश्रुत' (१९०) हैं, जगत्प्रसिद्ध होने से अथवा शास्त्रों में भी आपका यथार्थ स्वरूप नहीं जाना जाता, इसलिए आप 'विश्रुत' (१९१) हैं, आप की केवलज्ञान रूपी किरणें सब ओर फैली हुई हैं, इसलिए 'विश्वतः पाद' (१९२) है, लोक के शिखर पर विराजमान होने से 'विश्वशीर्ष' (१९३) हैं, तथा आप का ज्ञान अत्यन्त निर्दोष है इसलिए आप को 'शुचिश्रवा' (१९४) कहते हैं।

सहस्रशीर्षः क्षेत्रज्ञः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
भूतभव्यभवद्भर्ता विश्वविद्यामहेश्वरः।।११।।

अर्थ– अनन्त सुखी होने से 'सहस्रशीर्ष' (१९५) हैं, आत्मा का स्वरूप जानने से अथवा लोकालोक को जानने से 'क्षेत्रज्ञ' (१९६) हैं, अनन्तदर्शी होने से 'सहस्राक्ष' (१९७) हैं, अनन्तवीर्य को धारण करने से 'सहस्रपात्' (१९८) हैं, भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों कालों के स्वामी होने से 'भूतभव्यभवद्भर्ता' (१९९) हैं और समस्त विद्याओं

अथवा केवलज्ञान के स्वामी होने से 'विश्वविद्यामहेश्वर' (२००) कहे जाते हैं।

इति दिव्यादिशतम्।।२।। अर्घ्यम्।

स्थविष्ठः स्थविरो ज्येष्ठः पृष्ठः प्रेष्ठो वरिष्ठधीः।
स्थेष्ठो गरिष्ठो बंहिष्ठः श्रेष्ठोऽणिष्ठो गरिष्ठगीः।।१।।

अर्थ– सद्गुणों से विभूषित अथवा समस्त जीवों को अवकाश देने की शक्ति होने से आप को 'स्थविष्ठ' (२०१) कहते हैं, आदि अन्तरहित होने से अत्यन्त वृद्ध हैं, अथवा ज्ञान से वृद्ध हैं, इसलिए 'स्थविर' (२०२) कहते हैं, मुख्य होने से 'ज्येष्ठ' (२०३), सबके अग्रेसर होने से 'पृष्ठ' (२०४), अत्यन्त प्रिय होने से 'प्रेष्ट' (२०५), अतिशय बुद्धि को धारण करने से 'वरिष्ठधी' (२०६), अत्यन्त स्थिर अर्थात् अविनाशी होने से 'स्थेष्ठ' (२०७), अत्यन्तगुरु होने से 'गरिष्ठ' (२०८), अनन्त गुणों को धारण करने से अथवा अनेक स्वरूप होने से 'बंहिष्ठ' (२०९), प्रशंसनीय होने से 'श्रेष्ठ' (२१०), अतिशय सूक्ष्म अर्थात् केवलज्ञान के गोचर होने से 'अनिष्ठ' (२११), तथा वाणी पूज्य होने से आप 'गरिष्टगी' (२१२) कहे जाते हैं।

विश्वमुद् विश्वसृट् विश्वट् विश्वभुग् विश्वनायकः।
विश्वाशीर्विश्वरूपात्मा विश्वजिद्विजितान्तकः।।२।।

अर्थ– चतुर्गति रूप संसार को नाश करने से 'विश्वमुट्' (२१३), विधि विधान के कर्त्ता होने से 'विश्वसृट्' (२१४), तीनों भुवनों के स्वामी 'विश्वेट्' (२१५) जगत् की रक्षा करने से 'विश्वसृक' (२१६) सबके स्वामी होने से 'विश्वनायक' (२१७), समस्त प्राणियों के विश्वासयोग्य होने से अथवा केवलज्ञान के द्वारा सब जगह निवास करने से 'विश्वाशी' (२१८) कहे जाते हैं। विश्वरूप अर्थात् केवलज्ञान ही

आपका स्वरूप है, अथवा केवल आपका आत्मा अनन्त स्वरूप है, इसलिए आपको 'विश्वरूपात्मा' (२१९) कहते हैं, संसार को जीतने से विश्वजित् (२२०) और काल को जीतने से 'विजितान्तक' (२२१) कहलाते हैं।

विभवो विभयो वीरो विशोको विजरो जरन्।
विरागो विरतोऽसंगो विविक्तो वीतमत्सरः।।३।।

अर्थ– किसी प्रकार का मनोविकार नहीं है, इसलिए 'विभव' (२२२), भय रहित होने से 'विभय' (२२३) लक्ष्मी के स्वामी होने से अथवा अतिशय बलशाली होने से 'वीर' (२२४), शोक- रहित होने से 'विशोक' (२२५), जरा-रहित होने से 'विजर' (२२६) नवीन न होने से अर्थात् अनादिकालीन होने से 'जरन् वा वृद्ध' (२२७), रागरहित होने से 'विराग' (२२८) समस्त विषयों से विरक्त होने से 'विरत्' (२२९), पर वस्तु का सम्बन्ध न रखने से 'असङ्ग' (२३०), एकाकी अथवा पवित्र होने से 'विविक्त' (२३१), तथा किसी से ईर्ष्या द्वेष न करने से 'वीतमत्सर' (२३२) कहे जाते हैं।

विनेय जनता बन्धु र्विलीना , शेष कल्मषः।
वियोगी योगविद् विद्वान् विधाता सुविधिः सुधीः।।४।।

अर्थ– भक्तों के बंधु होने से 'विनयेजनताबन्धु' (२३३), कर्म रूपी समस्त कालिमा से रहित होने से 'विलिनाशेषकल्मष' (२३४), अन्य किसी वस्तु के साथ सम्बन्ध न होने से अथवा योग-रहित होने से 'वियोग' (२३५), योग के जानकार होने से 'योगवित्' (२३६), महापण्डित अथवा पूर्णज्ञानी होने से 'विद्वान' (२३७), धर्म रूपी सृष्टि के कर्ता होने से अथवा सबके गुरु होने से 'विधाता' (२३८), अनुष्ठान वा क्रिया अत्यन्त प्रशंसनीय होने से 'सुविधि' (२३९), तथा अतिशय बुद्धिमान होने से 'सुधी' (२४०) कहलाते हैं।

क्षान्तिभाक्पृथ्वीमूर्तिः शान्तिभाक् सलिलात्मकः।
वायुमूर्तिरसंगात्मा, वह्निमूर्तिरधर्मधृक्।।५।।

अर्थ– उत्तम क्षमा को धारण करने से 'शान्तिभाक्' (२४१), पृथ्वी के समान सहन शक्ति होने से 'पृथिवीमूर्ति' (२४२), शांतता धारण करने से 'शान्तिभाक्' (२४३), जल के समान अत्यन्त निर्मल होने से तथा अन्य जीवों को कर्ममल- रहित शुद्ध करने से 'सलिलात्मक' (२४४), वायु के समान परके सम्बंध से रहित होने से 'वायुमूर्ति' (२४५), परिग्रह रहित होने से 'असंगात्मा' (२४६) अग्नि के समान ऊर्ध्वगमन-स्वभाव होने से अथवा कर्म-रूपी ईंधन को जलाने से 'बह्निमूर्ति' (२४७) और अधर्म का नाश करने से 'अधर्मधृक्' (२४८) कहलाते हैं।

सुयज्वा यजमानात्मा सुत्वा सुत्रामपूजितः।
ऋत्विग्यज्ञपतिर्यज्ञो यज्ञांगममृतं हविः।।६।।

अर्थ– कर्म रूपी सामग्री का होम करने से 'सुयज्वा' (२४९), स्वभावभाव का आराधन करने से अथवा भाव पूजा के कर्ता होने से 'यजमानात्मा' (२५०), परमानन्द सागर में अभिषेक करने से 'सुत्वा' (२५१), इन्द्र के द्वारा पूज्य होने से 'सुत्रामपूजित' (२५२), ध्यान रूपी अग्नि में शुभाशुभ- रूप कर्मों को भस्म करने से अथवा ज्ञान-रूप यज्ञ करने से 'आचार्य' कहलाते हैं। इसलिए आपको 'ऋत्विक' (२५३) कहते हैं। यज्ञ के मुख्य अधिकारी होने से 'यज्ञपति' (२५४) पूज्य होने से 'यज्य' (२५५), यज्ञ के साधन अर्थात् मुख्य कारण होने से 'यज्ञांग' (२५६), मरण रहित होने से अथवा संसार-तृष्णा को निवारण करने से 'अमृत' (२५७), और अपनी आत्मा में तल्लीन रहने से 'हवि' (२५८) कहलाते हैं।

व्योममूर्तिरमूर्तात्मा निर्लेपो निर्मलोऽचलः।
सोममूर्तिः सुसौम्यात्मा सूर्यमूर्तिर्महाप्रभः।।७।।

अर्थ– आकाश के समान निर्मल अथवा केवलज्ञान के द्वारा सर्वव्यापी होने से 'व्योममूर्ति' (२५९), रूप, रस, गंध, स्पर्श-रहित होने से 'अमूर्त्तात्मा' (२६०), कर्म रूपी लेप से रहित होने से 'निर्लेप' (२६१), रागादि- रहित होने से अथवा मलमूत्रादि-रहित होने से 'निर्मल' (२६२), सर्वदा स्थिर रहने से 'अचल' (२६३), एवं चंद्रमा के समान प्रकाशमान और शांत होने से अथवा अत्यन्त सुशोभित होने से 'सोममूर्ति' (२६४), कहे जाते हैं। अतिशय सौम्य होने से 'सुसौम्यात्मा' (२६५), सूर्य के समान अत्यन्त कान्ति-सहित होने से 'सूर्यमूर्ति' (२६६), तथा अतिशय प्रभावशाली होने से अथवा केवलज्ञान-रूपी तेज से सुशोभित होने से 'महाप्रभ' (२६७), कहलाते हैं।

मन्त्रविन्मन्त्रकृन्मन्त्री मन्त्रमूर्तिरनन्तगः।
स्वतन्त्रस्तन्त्रकृत्स्वान्तः कृतान्तान्तः कृतान्तकृत्।।८।।

अर्थ– मंत्र के ज्ञाता होने से 'मंत्रवित्' (२६८), प्रथमानुयोग आदि चारों अनुयोगरूप मंत्रों के अथवा जप करने योग्य मंत्रों के कर्ता होने से 'मंत्रकृत' (२६९), आत्मा का विचार करने से अथवा लोक की रक्षा करने से अथवा मुख्य होने से 'मन्त्री' (२७०), मंत्रस्वरूप होने से 'मंत्रमूर्ति' (२७१), तथा अनन्तज्ञानी होने से 'अनंतग' (२७२), कहलाते हैं। स्वाधीन होने से अथवा आत्मा ही आपका सिद्धान्त होने से 'स्वतन्त्र' (२७३), आगम के मुख्यकर्ता होने से 'तन्त्रकृत' (२७४), शुद्ध अन्तः करण होने से 'स्वन्त' (२७५), यम अर्थात् मरण को नाश करने से 'कृतांतांत' (२७६), और पुण्य वृद्धि के कारण होने से 'कृतांतकृत' (२७७), कहे जाते हैं।

कृती कृतार्थः सत्कृत्यः कृतकृत्यः कृतक्रतुः।
नित्यो मृत्युंजयोऽमृत्युरमृतात्माऽमृतोद्भवः।।९।।

अर्थ– प्रवीण अथवा अतिशय पुण्यवान् अथवा हरिहरादि द्वारा पूज्य होने से 'कृती' (२७८), मोक्षरूप परमपुरुषार्थ को सिद्ध करने से 'कृतार्थ' (२७९), कृत्य अतिशय प्रशंसनीय होने से 'सत्कृत्य' (२८०), कर्तव्य समस्त कार्य करने से अथवा सब कार्यों में सफलीभूत होने से 'कृतकृत्य' (२८१), तथा ध्यानरूपी अग्नि में कर्म, नोकर्म आदि को भस्म करने से अथवा ज्ञानरूपी यज्ञ को करने से, अथवा तपश्चर्यारूपी यज्ञ समाप्त होने से 'कृतक्रतु' (२८२), कहे जाते हैं। अविनाशी होने से 'नित्य' (२८३), मृत्यु को जीतने से 'मृत्युञ्जय' (२८४), आत्मा कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होती इसलिए 'अमृत्यु' (२८५), तथा मरणरहित होने से अथवा अमृतस्वरूप होने से 'अमृतात्मा' (२८६) कहे जाते हैं। जन्ममरण रहित होने से अथवा अविनश्वर अवस्था को प्राप्त होने से अथवा भव्यजीवों को मोक्ष प्राप्ति का कारण होने से 'अमृतोद्भव' (२८७), नाम से आप पूजित हैं।

ब्रह्मनिष्ठः परंब्रह्म ब्रह्मात्मा ब्रह्मसंभवः।
महाब्रह्मपतिर्ब्रह्मेट् महाब्रह्मपदेश्वरः।।१०।।

अर्थ– शुद्ध आत्मा में तल्लीन रहने से 'ब्रह्मनिष्ठ' (२८८), सबमें उत्कृष्ट केवलज्ञान को धारण करने से 'परब्रह्म' (२८९), ज्ञान स्वरूप होने से 'ब्रह्मात्मा' (२९०), ज्ञान की उत्पत्ति स्थल होने से, शुद्ध आत्मा की प्राप्ति होने से 'ब्रह्मसंभव' (२९१), कहे जाते हैं। गणधरादि के स्वामी होने से 'महाब्रह्मपति' (२९२), केवली भी आपकी स्तुति करते हैं अथवा केवलज्ञान के स्वामी हैं इसलिए 'ब्रह्मेट्' (२९३), तथा मोक्ष के स्वामी अथवा समवसरण के स्वामी होने से 'महाब्रह्मपदेश्वर' (२९४), कहे जाते हैं।

सुप्रसन्नः प्रसन्नात्मा ज्ञान धर्म दमप्रभुः।
प्रशमात्मा प्रशान्तात्मा पुराणपुरुषोत्तमः।।११।।

अर्थ– भक्तों को देने से अथवा सदा आनंदस्वरूप होने से 'सुप्रसन्न' (२९५), मलरहित होने से 'प्रसन्नात्मा' (२९६), केवलज्ञान और इन्द्रियनिग्रह तपश्चरण के स्वामी होने से 'ज्ञानधर्मदमप्रभु' (२९७), क्रोधादि रहित होने से 'प्रशमात्मा' (२९८), परमशांतरूप होने से 'प्रशांतात्मा' (२९९), और अनादिकाल से मोक्षस्थान में निवास करने से अथवा अनादिकाल से होने वाले त्रेसठ शलाका पुरुषों में उत्कृष्ट होने से 'पुराणपुरुषोत्तम' (३००), कहलाते हैं।

इति स्थविष्ठादिशतम्।।३।। अर्घ्यम्।

महाशोकध्वजोऽशोकः कः स्रष्टा पद्मविष्टरः।
पद्मेशः पद्मसंभूतिः पद्मनाभिरनुत्तरः।।१।।

अर्थ– महा अशोकवृक्ष का चिन्ह होने से 'महाअशोकध्वज' (३०१), शोक रहित होने से 'अशोक' (३०२), सबके पितामह होकर, सबको सुख देने से 'क' (३०३), भक्तों को स्वर्ग प्राप्त कराने से 'स्रष्टा' (३०४), कमलासन होने से 'पद्मविष्टर' (३०५), लक्ष्मी के स्वामी होने से 'पद्मेश' (३०६), तथा विहार काल में चरणों के नीचे कमलों की रचना होने से 'पद्मसम्भूति' (३०७), कहे जाते हैं। कमल के समान सुन्दर नाभि होने से 'पद्मनाभि (३०८), तथा अनन्य श्रेष्ठ होने से 'अनुत्तर (३०९), कहलाते हैं।

पद्मयोनिर्जगद्योनिरित्यः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः।
स्तवनार्हो हृषीकेशो जितजेयः कृतक्रियः।।२।।

अर्थ– लक्ष्मी की उत्पत्तिस्थल होने से 'पद्मयोनि' (३१०), जगत् की उत्पत्ति के कारण होने से 'जगत्योनि' (३११), ज्ञानगम्य होने से 'इत्य' (३१२), सबके द्वारा स्तुति करने योग्य होने से 'स्तुत्य' (३१३), तथा समस्त स्तुतियों के ईश्वर होने से 'स्तुतीश्वर' (३१४), कहे जाते हैं। स्तुतियों के पात्र होने से 'स्तवनार्ह' (३१५), इन्द्रियों को वश करने से 'हृषीकेश' (३१६), काम, क्रोध, राग आदि को जीत लेने से 'जितजेय' (३१७), और शुद्ध आत्मा की प्राप्ति के सब कृत्य पूर्ण करने से 'कृतक्रिय' (३१८), कहलाते हैं।

गणाधिपो गणज्येष्ठो गण्यः पुण्यो गणाग्रणीः।
गुणाकरो गुणाम्भोधिर्गुणज्ञो गुणनायकः।।३।।

अर्थ– बारह प्रकार की सभाओं के स्वामी होने से 'गणाधिप' (३१९), समस्त संघ के मुख्य होने से 'गणज्येष्ठ' (३२०), अनन्त गुणों के स्वामी होने से 'गण्य' (३२१), पवित्र होने से 'पुण्य' (३२२), तथा सबके अग्रेसर होने से 'गणाग्रणी' (३२३), नाम से प्रसिद्ध हैं। गुणों की खानि होने से 'गुणाकर' (३२४), गुणों के समुद्र होने से 'गुणांभोधि' (३२५), गुणों के जानने से 'गुणज्ञ;' (३२६), तथा समस्त गुणों के नायक होने से 'गुणनायक' (३२७), हैं।

गुणादरी गुणोच्छेदी निर्गुणः पुण्यगीर्गुणः।
शरण्यः पुण्यवाक्पूतो वरेण्यः पुण्यनायकः।।४।।

अर्थ– गुणों का आदर करने से 'गुणादरी' (३२८), क्रोधादि अवगुणों का नाश करने से अथवा इन्द्रियों को दमन करने से 'गुणोच्छेदी' (३२९), केवलज्ञानादि निश्चित-रूप से होने से अथवा विभाव गुणों का नाश करने से अथवा गुण अर्थात् तन्तु वा वस्त्र-रहित होने से 'निर्गुण' (३३०), की संज्ञा आप को दी गई है। वाणी पवित्र

होने से 'पुण्यगी' (३३१), शुद्ध गुण-स्वरूप होने से 'गुण' (३३२), सबके शरणभूत होने से 'शरण्य' (३३३), पुण्य-रूप वचन होने से 'पुण्यवाक्' (३३४), पवित्र होने से 'पूत' (३३५), सबसे श्रेष्ठ होने से अथवा जीवों को मुक्ति दिलाने से 'वरेण्य' (३३६), तथा पुण्य के स्वामी होने से 'पुण्यनायक' (३३७) कहे जाते हैं।

अगण्यः पुण्यधीर्गुण्यः पुण्यकृत्पुण्यशासनः।
धर्मारामो गुणग्रामः पुण्यापुण्यनिरोधकः।।५।।

अर्थ– आप परिमाण से परे हैं अथवा आपके गुण अनगितन हैं, इसलिए आप 'अगण्य' (३३८) हैं। पवित्र ज्ञान होने से 'पुण्यधी' (३३९), सबका कल्याण करने से एवं समवशरण के योग्य होने से 'गुण्य' (३४०), पुण्य के कर्ता होने से 'पुण्यकृत्' (३४१), तथा मार्ग वा शत पुण्य-रूप होने से 'पुण्यशासन' (३४२), कहे जाते हैं। धर्म का बाग (समूह), होने से 'धर्माराम' (३४३), गुणों के समूह होने से 'गुणग्राम' (३४४), तथा पुण्य और पाप दोनों का निरोध करने से 'पुण्यापुण्यनिरोधक' (३४५), कहे जाते हैं।

पापापेतो विपापात्मा विपात्मा वीतकल्मषः।
निर्द्वन्द्वो निर्मदः शान्तो निर्मोहो निरुपद्रवः।।६।।

अर्थ– हिंसादि समस्त पापों से रहित होने से 'पापापेत' (३४६), पाप रहित होने से 'विपापात्मा' (३४७), पापकर्म नष्ट होने से 'विपात्मा' (३४८), एवं कर्ममल-रहित होने से 'वीतकल्मष' (३४९), कहलाते हैं। परिग्रह रहित होने से 'निर्द्वन्द्व' (३५०), अहंकार न होने से 'निर्मद' (३५१), उपाधि रहित होने से 'शांत' (३५२), मोह रहित होने से 'निर्मोह' (३५३), तथा उपद्रवरहित होने से 'निरुपद्रव' (३५४), कहे जाते हैं।

निर्निमेषो निराहारो निष्क्रियो निरुपप्लवः।
निष्कलंको निरस्तैना निर्धूतांगा निरास्रवः।।७।।

अर्थ– आपके नेत्रों के पलक दूसरे पलक से नहीं लगते, अथवा आपकी पलकें नहीं झपकती इसलिए 'निर्निमेष' (३५५), कवलाहार न करने से 'निराहार' (३५६), क्रिया रहित होने से 'निष्क्रिय' (३५७), एंव सर्वप्रकार के संकट रहित होने से 'निरुपप्लव' (३५८), कहे जाते हैं। कलंकरहित होने से 'निष्कलंक' (३५९), पापों को दूरे करने से 'निरस्तैना' (३६०), अपराधों का नाश करने से 'निर्धूतांगा' (३६१), तथा आस्त्रव रहित होने से 'निरास्त्रव' (३६२), की संज्ञा आपको प्राप्त है।

विशालो विपुलज्योति-रतुलोऽचिन्त्यवैभवः।
सुसंवृतः सुगुप्तात्मा सुभूत् सुनयतत्त्ववित्।।८।।

अर्थ– वृहदाकार होने से 'विशाल' (३६३), केवलज्ञानरूप अपार ज्योति को धारण करने से 'विपुलज्योति' (३६४), अनुपम होने से 'अतुल' (३६५), असामान्य तथा आपकी विभूति का कोई चिंतवन भी नहीं कर सकता, इसलिए 'अचिंत्यवैभव' (३६६), संवृतरूप होने से अथवा गणधरादिकों से वेष्टित रहने से 'सुसंवृत' (३६७), आत्मा गुप्त होने से अथवा आस्त्रवादि से अलग होने से 'सुगुप्तात्मा' (३६८), उत्तम ज्ञाता होने से 'सुभूत' (३६९), तथा नैगम संग्रह आदि नयों का मर्म जानने से 'सुनयतत्त्ववित्' (३७०), कहलाते हैं।

एकविद्यो महाविद्यो मुनिः परिवृढः पतिः।
धीशो विद्यानिधिः साक्षी विनेता विहतान्तकः।।९।।

अर्थ– एक केवलज्ञान को धारण करने से अर्थात् एक अध्यात्म विद्या को धारण करने से 'एकविद्य' (३७१), कहलाते हैं, अनेक

विद्यायें धारण करने से 'महाकवि' (३७२), प्रत्यक्षज्ञानी होने से 'मुनि' (३७३), तपस्वियों के स्वामी होने से 'परिवृढ़' (३७४), हैं, जगत की रक्षा करने से अथवा दुःख दूर करने से 'पति' (३७५), बुद्धि के स्वामी होने से 'धीश' (३७६), ज्ञान के सागर होने से 'विद्यानिधि' (३७७), मोक्षमार्ग को प्रगट करने से 'विनेता' (३७९), तथा यम का नाश करने से 'विहतांतक' (३८०), कहे जाते हैं।

पिता पितामहः पाता पवित्रः पावनो गतिः।
त्राता भिषग्वरो वर्यो वरदः परमः पुमान्।।१०।।

अर्थ- नरकादि गतियों से रक्षा करने से 'पिता' (३८१), सबके गुरु होने से 'पितामह' (३८२), सबकी रक्षा करने से 'पाता' (३८३), भक्तों को पवित्र करने से 'पवित्र' (३८४), सबको शुद्ध करने से 'पावन' (३८५), तथा ज्ञानस्वरूप होने से 'गति' (३८६), कहे जाते हैं। सबकी रक्षा करने से 'त्राता' (३८७), नाम लेने से ही समस्त रोग अथवा जन्म जरा मरण आदि रोग दूर हो जाने से 'भिषग्वर' अर्थात् 'उत्तम वैद्य' (३८८), सबसे श्रेष्ठ होने से 'वर्य' (३८९), स्वर्गमोक्षादि के दाता होने से 'वरद' (३९०), तथा भक्तों की इच्छा पूर्ण होने से 'परम' (३९१), कहलाते हैं। अपनी आत्मा को तथा भक्तों को पवित्र करने से 'पुमान' (३९२) हैं।

कविः पुराणपुरुषो वर्षीयान्वृषभः पुरुः।
प्रतिष्ठा प्रसवो हेतु-र्भुवनैकपितामहः।।११।।

अर्थ– धर्म अधर्म का निरुपण करने से 'कवि' (३९३), अनादिकालीन होने से 'पुराणपुरुष' (३९४), अतिशय वृद्ध होने से 'वर्षीयान्' (३९५), ज्ञानी होने से 'वृषभ' (३९६), तथा सब में अग्रग्रामी होने से 'पुरु' (३९७) कहलाते हैं। आपसे स्थैर्य गुण की

उत्पत्ति हुई है अथवा आपकी सेवा करने से यह जीव जगतमान्य हो जाता है, इसलिए आप 'प्रतिष्ठाप्रसव' (३९८), हैं। मोक्ष के कारण होने से 'हेतु' (३९९), तथा तीनों लोकों के जीवों की रक्षा करने से किंवा हितोपदेश देने से 'भुवनैकपितामह' (४००) नाम से प्रसिद्ध हैं।

इति महाशोकध्वजादिशतम्।।४।। अर्घ्यम्।

श्रीवृक्षलक्षणः श्लक्ष्णो लक्षण्यः शुभलक्षणः।
निरक्षः पुण्डरीकाक्षः पुष्कलः पुष्करेक्षणः।।१।।

अर्थ– श्रीवृक्ष का चिन्ह होने से 'श्रीवृक्षलक्षण' (४०१), सूक्ष्म होने से अथवा लक्ष्मी के द्वारा आलिंगित होने से 'श्लक्ष्ण' (४०२), लक्षण-सहित होने से 'लक्षण्य' (४०३), तथा अनेक शुभ लक्षण होने से 'शुभलक्षण' (४०४), कहलाते हैं। इन्द्रिय-रहित होने से 'निरक्ष' (४०५), कमल के समान सुन्दर नेत्र होने से 'पुंडरीकाक्ष' (४०६), केवलज्ञान के वृद्धिंगत होने से 'पुष्कल' (४०७), और कमलदल के समान दीर्घ नेत्र होने से 'पुष्करेक्षण' (४०८), कहलाते हैं।

सिद्धिदः सिद्धसंकल्पः सिद्धात्मा सिद्धसाधनः।
बुद्धबोध्यो महाबोधि-वर्धमानो महर्द्धिकः।।२।।

अर्थ–मोक्षरूप सिद्धि को देने से 'सिद्धिद' (४०९), समस्त मनोरथ सफल होने से 'सिद्धसंकल्प' (४१०), पूर्ण आनन्द-स्वरूप होने से 'सिद्धात्मा' (४११), मोक्षमार्ग-रूप साधन होने से 'सिद्धसाधन' (४१२), तथा सम्यग्दृष्टियों द्वारा अथवा विशेष ज्ञानियों के द्वारा जानने योग्य होने से 'बुद्धबोध्य' (४१३), नाम से प्रसिद्ध हैं। रत्नत्रय अत्यन्त प्रशंसनीय होने से अथवा अतिशय ज्ञानी होने से 'महाबोधि' (४१४), अतिशय पूज्यपना होने से 'वर्द्धमान' (४१५), तथा बड़ी भारी विभूति को धारण

करने से 'महर्द्धिक' (४१६), कहे जाते हैं।

वेदांगो वेदविद् वेद्यो जातरूपो विदांवरः।
वेदवेद्यः स्वसंवेद्यो विवेदो वदतांवरः।।३।।

अर्थ– प्रथमानुयोग आदि चारों वेदों के कारण -रूप होने से अथवा ज्ञानस्वरूप होने से 'वेदांग' (४१७), चारों अनुयोगों को जानने से अथवा आत्मा का स्वरूप जानने से 'वेदवित्' (४१८), आगम के द्वारा जानने योग्य होने से 'वेद्य' (४१९), तथा उत्पन्न होते समय के समान ही आपका रूप दिगम्बर है इसलिए 'जातरूप' (४२०), विद्वानों में श्रेष्ठ होने से 'विदांवर' (४२१) केवलज्ञान के द्वारा अथवा आगम के द्वारा जानने योग्य होने से 'वेदवेद्य' (४२२), अनुभवगम्य होने से 'स्वसंवेद्य' (४२३), विलक्षण ज्ञानी होने से अथवा आगम के अगोचर होने से 'विवेद' (४२४), तथा वक्ताओं में श्रेष्ठ होने से आप 'वदतांवर' (४२५), हैं।

अनादिनिधनोऽव्यक्तो व्यक्तवाग्व्यक्तशासनः।
युगादिकृद्युगाधारो युगादिर्जगदादिजः।।४।।

अर्थ– आदि अन्त-रहित होने से 'अनादिनिधन' (४२६), ज्ञान के द्वारा स्पष्ट प्रतिभासित होने से 'व्यक्त' (४२७), वचन प्राणियों के बोधगम्य होने से 'व्यक्तवाक्' (४२८), तथा आपकी आज्ञा वा मत समस्त संसार में प्रसिद्ध होने से अथवा आपके कहे हुए शास्त्र पूर्वापर -विरोध रहित होने से आप 'व्यक्तशासन' (४२९), कहलाते हैं। युग की आदि अर्थात् कर्म-भूमि के कर्त्ता होने से 'युगादिकृत' (४३०), युगों का आधार होने से 'युगाधर' (४३१), युग के प्रारम्भ में होने से 'युगादि' (४३२), और जगत् की आदि से अर्थात् कर्मभूमि

की आदि में उत्पन्न होने से 'जगदादिज' (४३३), कहलाते हैं।

अतीन्द्रोऽतीन्द्रियो धीन्द्रो महेन्द्रोऽतीन्द्रियार्थदृक्।
अनिन्द्रियोऽहमिन्द्रार्च्यो महेन्द्रमहितो महान्।।५।।

अर्थ– इन्द्र नरेन्द्र आदि सबके विशेष स्वामी होने से 'अतीन्द्र' (४३४), इन्द्रियगोचर न होने से 'अतीन्द्रिय' (४३५), ज्ञान के स्वामी होने से अथवा शुक्लध्यान के द्वारा परमात्म-स्वरूप होने से 'धीन्द्र' (४३६), पूजा के अधिपति होने से अथवा इन्द्र से भी अधिक सम्पत्तिमान् होने से 'महेन्द्र' (४३७), तथा इन्द्रिय और मन के अगोचर पदार्थों को जानने से 'अतिन्द्रियार्थदृक' (४३८), कहलाते हैं। इन्द्रिय रहित होने से 'अनिन्द्रिय (४३९), अहमिन्द्रों के द्वारा पूज्य होने से 'अहमिन्द्रार्च्य' (४४०), समस्त बड़े-बड़े इन्द्रों के द्वारा पूज्य होने से 'महेन्द्रमहित' (४४१), तथा सबसे पूज्य व बड़े होने से 'महान्' (४४२), नाम से प्रसिद्ध हैं।

उद्भवः कारणं कर्ता पारगो भवतारकः।
अगाह्यो गहनं गुह्यं परार्घ्यः परमेश्वरः।।६।।

अर्थ– जन्म मरण रहित सर्वोकृष्ट जन्म होने से 'उद्भव' (४४३), मोक्ष के कारण होने से 'कारण' (४४४), शुद्ध-भावों के कर्ता होने से 'कर्ता' (४४५), तथा संसार-समुद्र के पारगामी होने से 'पारग' (४४६), कहलाते हैं। भव्य जीवों को संसार-समुद्र के पार लगाने से 'भवतारक' (४४७), किसी के भी द्वारा अवगाहन न करने से 'अग्राह्य' (४४८), आप का स्वरूप हर कोई नहीं जान सकता, इसलिए 'गहन' (४४९), तथा परम रहस्य-रूप अर्थात् गुप्त रूप होने से 'गुह्य' (४५०), कहे जाते हैं। उत्कृष्ट विभूति के स्वामी होने से 'परार्घ्य'

(४५१), और सबके स्वामी होने से अथवा मोक्षलक्ष्मी के स्वामी होने से 'परमेश्वर' (४५२), नाम से पुकारे जाते हैं।

अनन्तर्द्धिरमेयर्द्धि-रचिन्त्यर्द्धिः समग्रधीः।
प्राग्रयः प्राग्रहरोऽभ्यग्रः प्रत्यग्रोऽग्रयोऽग्रिमोऽग्रजः।।७।।

अर्थ– अनन्त ऋद्धियों को धारण करने से 'अनन्तर्द्धि (४५३), अपरिमित ऐश्वर्य को धारण करने से 'अमेयर्द्धि' (४५४), सम्पत्ति का कोई परिमाण न होने से 'अचिंत्यर्द्धि' (४५५), तथा जगत के समस्त पदार्थों को जानने योग्य पूर्ण ज्ञान होने से 'समग्रधी' (४५६), कहे जाते हैं। सबमें मुख्य होने से 'प्राग्र' (४५७), सबसे श्रेष्ठता प्राप्त करने से 'प्राग्रहर' (४५८), श्रेष्ठों में श्रेष्ठ होने से 'अभ्यग्र' (४५९), हैं, तथा बलवानों में अत्यन्त श्रेष्ठ होने से अथवा लोक का मुख्य भाग पसन्द करने से 'प्रत्यग्र' (४६०), नाम से पुकारे जाते हैं। सबके नायक होने से 'अग्रय' (४६१), सबके अग्रेसर होने से 'अग्रिम' (४६२), तथा सबसे बडे होने से 'अग्रज' (४६३), हैं।

महातपा महातेजा महोदर्को महोदयः।
महायशा महाधामा महासत्त्वो महाधृतिः।।८।।

अर्थ– कठिन तपश्चरण करने से 'महातपा' (४६४), अतिशय तेजस्वी एवं पुण्यवान् होने से 'महातेजा' (४६५), तथा आपकी तपश्चर्या का फल केवलज्ञान है, इसलिए आप 'महोदर्क' (४६६), कहलाते हैं। अतिशय प्रतापी होने से अथवा सबको आनन्द देने वाला जन्म होने से 'महोदय' (४६७), अतिशय यशस्वी होने से 'महायशा' (४६८), अतिशय प्रकाश-रूप होने से 'महाधामा' (४६९), अतिशय बलवान होने से 'महासत्त्व' (४७०), और अतिशय धीर वीर होने से 'महाधृति' (४७१), नाम से भक्त आपको पुकारते हैं।

महाधैर्यो महावीर्यो महासंपन्महाबलः।
महाशक्ति र्महाज्योति र्महाभूति र्महाद्युतिः।।९।।

अर्थ– कभी भी व्यग्र न होने से 'महाधैर्य' (४७२), अतिशय सामर्थ्यवान् होने से 'महावीर्य' (४७३), हैं, समवसरण रूपी अद्वितीय विभूति को धारण करने से 'महासंपत्' (४७४), अतिशय बलवान् होने से 'महाबल' (४७५), अनन्त शक्ति होने से महाशक्ति (४७६), अतिशय कांतियुक्त होने से 'महाज्योति' (४७७), पंचकल्याणकों की महाविभूति के स्वामी होने से 'महाभूति' (४७८), और अतिशय शोभायमान होने से 'महाद्युति' (४७९), कहे जाते हैं।

महामति र्महानीति र्महाक्षान्ति र्महोदयः।
महाप्राज्ञो महाभागो महानन्दो महाकविः।।१०।।

अर्थ– अतिशय बुद्धिमान होने से 'महामति' (४८०), अतिशय न्यायवान होने से 'महानीति' (४८१), अतिशय क्षमावान होने से 'महाक्षांति' (४८२), अतिशय दयालु होने से 'महोदय' (४८३), अतिशय प्रवीण होने से 'महाप्राज्ञ' (४८४), अतिशय भाग्यशाली होने से 'महाभाग' (४८५), अतिशय आनन्द स्वरूप होने से अथवा भव्यजीवों को आनन्द देने से 'महानन्द' (४८६), तथा शास्त्रों के मुख्य कर्ता होने से 'महाकवि' (४८७), के नामों से आपकी प्रसिद्धि है।

महामहा महाकीर्ति-र्महाकान्तिर्महावपुः।
महादानो महाज्ञानो महायोगो महागुणः।।११।।

अर्थ– अत्यन्त तेजस्वी होने से 'महामहा' (४८८), कीर्ति सब जगह व्याप्त होने से 'महाकीर्ति' (४८९), अत्यंत कांतियुक्त होने से 'महाकांति' (४९०), अतिशय सुन्दर शरीर होने से 'महावपु'

(४९१), बड़े भारी दानी होने से 'महादानी' (४९२), केवलज्ञान को धारण करने से 'महाज्ञानी' (४९३), योगों का निरोध करने से 'महायोगी' (४९४), तथा लोकों का कल्याण करने वाले गुणों से 'महागुणी' (४९५), के नाम से प्रसिद्ध हैं।

महामहपतिः प्राप्तमहाकल्याणपंचकः।
महाप्रभुर्महाप्रातिहार्याधीशो महेश्वरः।।१२।।

अर्थ– पंचकल्याण रूप महा पूजा के स्वामी होने से 'महामहपति' (४९६), तथा गर्भावतार आदि पांचों कल्याणों को प्राप्त होने से 'प्राप्तमहा कल्याण पंचक' (४९७), कहलाते हैं। अतिशय समर्थ अथवा सबसे बड़े स्वामी होने से 'महाप्रभु' (४९८), अशोक वृक्ष आदि आठों प्रातिहार्यों के स्वामी होने से 'महाप्रातिहार्याधीश' (४९९), और इन्द्रादि सब देवों के अधीश्वर होने से 'महेश्वर' (५००), कहलाते हैं।

इति श्रीवृक्षादिशतम्।।५।। अर्घ्यम्।

महामुनिर्महामौनी महाध्यानो महादमः।
महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः।।१।।

अर्थ– मुनियों में उत्तम होने से अथवा प्रत्यक्ष ज्ञानी होने से 'महामुनि' (५०१), वचनालाप-रहित होने से 'महामोनी' (५०२), शुक्लध्यान करने से 'महाध्यानी' (५०३), तथा विषय-कषायों के दमन करने से 'महादम' (५०४) कहलताते हैं। अतिशय क्षमावान् होने से 'महाक्षम' (५०५), पूर्ण ब्रह्मचारी होने से अथवा शीलयुक्त होने से 'महाशील' (५०६), स्वाभाविक परिणति रूप अग्नि में विभाव-परिणति रूप सामग्री को हवन कर अथवा तपश्चरण-रूप अग्नि में विषयाभिलाषा को हवन कर महायज्ञ करने से अथवा

केवलज्ञान-रूप महायज्ञ प्राप्त होने से 'महायज्ञ' (५०७), तथा अतिशय पूज्य होने से 'महामख' (५०८), कहे जाते हैं।

महाव्रतपतिर्मह्यो महाकान्ति धरोऽधिपः।
महामैत्री मयामेयो महोपायो महोमयः।।२।।

अर्थ– पंच महाव्रतों के स्वामी होने से 'महाव्रतपति' (५०९), जगत्पूज्य होने से 'मह्य' (५१०), अत्यन्त तेज को धारण करने से 'महाकांतिधर' (५११), तथा समस्त जीवों की रक्षा करने से अथवा सबके स्वामी होने से 'अधिप' (५१२), नाम से प्रसिद्ध हैं। समस्त जीवों के साथ मैत्री भाव रखने से 'महामैत्रीमय' (५१३), किसी भी परिमाण से गिने अथवा नापे नहीं जाते इसलिए 'अमेय' (५१४), मोक्ष के लिए सबसे उत्तम उपाय करने से 'महोपाय' (५१५), तथा मंगलमय, ज्ञानमय अथवा तेज-स्वरूप होने से 'महोमय' (५१६), कहलाते हैं।

महाकारुणिको मन्ता महामन्त्रो महायतिः।
महानादो महाघोषो महेज्यो महसांपतिः।।३।।

अर्थ– सब जीवों में दया करने से 'महाकारुणिक' (५१७), सबको जानने से 'मन्ता' (५१८), अनेक मंत्रों के स्वामी होने से 'महामंत्र' (५१९), सबसे श्रेष्ठ इन्द्रिय निग्रही होने से 'महायति' (५२०), कहे जाते हैं। गम्भीर दिव्यध्वनि करने से 'महानाद' (५२१), ध्वनि अतिशय सुन्दर होने से 'महाघोष' (५२२), बड़े पुरुषों के द्वारा पूज्य होने से अथवा केवल ज्ञान-रूप यज्ञ करने से 'महेज्य' (५२३), तथा समस्त तेज के अधिकारी होने से 'महासाम्पति' (५२४), कहे जाते हैं।

महाध्वरधरो धुर्यो महौदार्यो महेष्ठ-वाक्।

महात्मा महसांधाम महर्षिर्महितोदयः।।४।।

अर्थ– अहिंसादि व्रतों के धारण करने से 'महाध्वरधर' (५२५), धुरन्धर होने से 'धुर्य' (५२६), अतिशय उदार होने से 'महौदार्य' (५२७), तथा वाणी परम पूज्य होने से 'महेष्टवाक्' (५२८), हैं। सर्वपूज्य होने से 'महात्मा' (५२९), समस्त प्रकाश वा तेज के स्थान होने से 'महसांधाम' (५३०), सब प्रकार की ऋद्धियों को प्राप्त होने से 'महर्षि' (५३१), और सबके पूज्य तीर्थंकर रूप होने से 'महितोदय' (५३२), कहलाते हैं।

महाक्लेशाङ्कुशः शूरो महाभूतपतिर्गुरुः।
महापराक्रमोऽनन्तो महाक्रोधरिपुर्वशी।।५।।

अर्थ– महान् संकटों को दूर करने से तथा महाक्लेश अर्थात् तपश्चरण-रूप अंकुश को धारण करने से 'महाक्लेशांकुश' (५३३), घातिया कर्म रूप शत्रुओं को जीतने से 'शूर' (५३४), गणधर चक्रवर्ती आदि बड़े-बड़े पुरुषों के स्वामी होने से 'महाभूतपति' (५३५), तथा सबको धर्मोपदेश देने से 'गुरु' (५३६), हैं। अतिशय पराक्रमी होने से अथवा ज्ञानशक्ति अधिक होने से महापराक्रम (५३७), अन्त रहित होने से 'अनन्त' (५३८), क्रोध के भारी शत्रु होने से 'महाक्रोधरिपु' (५३९), और सबको तथा इन्द्रियों को वश करने से 'वशी' (५४०), कहलाते हैं।

महाभवाब्धि- संतारी र्महामोहाद्रिसूदनः।
महागुणाकरः क्षान्तो महायोगीश्वरः शमी।।६।।

अर्थ– संसार-सागर से पार कराने से 'महाभवाब्धिसंतारी' (५४१), तथा मोह-रूपी महा पर्वत को भेदन करने से

होने से 'महागुणाकर' (५४३), कषाय रहित होने से 'क्षान्त' (५४४), गणधर आदि महायोगियों के स्वामी होने से 'महायोगीश्वर' (५४५), तथा समस्त कर्मों का क्षय करने से अथवा परम सुखी होने से 'शमी' (५४६), कहलाते हैं।

महाध्यानपतिर्ध्याति महाधर्मा महाव्रतः।
महाकर्मा रिहाऽत्मज्ञो महादेवो महेशिता।।७।।

अर्थ– परम शुक्लध्यान के स्वामी होने से 'महाध्यानपति' (५४७), अहिंसा धर्म का ध्यान करने से 'ध्यातमहाधर्म' (५४८), तथा महाव्रतों को धारण करने से 'महाव्रत' (५४९), हैं। कर्म-रूपी महा शत्रुओं को नाश करने से 'महाकर्मारिहा' (५५०), आत्मा का स्वरूप जानने से 'आत्मज्ञ' (५५१), समस्त देवों के स्वामी होने से 'महादेव' (५५२), तथा विलक्षण ऐश्वर्य को धारण करने से 'महेशिता' (५५३), कहलाते हैं।

सर्वक्लेशापहः साधुः सर्वदोषहरो हरः।
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकरः।।८।।

अर्थ– शारीरिक और मानसिक क्लेशों के दूर करने से 'सर्वक्लेशापह' (५५४), रत्नत्रय को सिद्ध करने से 'साधु' (५५५), भव्य जीवों के समस्त दोष दूर करने से 'सर्वदोषहर' (५५६), तथा अनेक जन्मों के किये हुए पापों को हरण करने से 'हर' (५५७), हैं। असंख्यात गुणों को धारण करने से 'असंख्येय' (५५८), प्रमाण रहित शक्ति को धारण करने से 'अप्रमेयात्मा'' (५५९), परम शान्त स्वरूप होने से 'शमात्मा' (५६०), तथा शान्तता की मूर्ति होने से 'प्रशमाकर' (५६१) हैं।

सर्वयोगीश्वरोऽचिन्त्यः श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः।
दान्तात्मा दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वगः।।९।।

अर्थ– समस्त योगियों के ईश्वर होने से 'सर्वयोगीश्वर' (५६२), चिंतवन के अतीत होने से 'अचिंत्य' (५६३), समस्त शास्त्रों के रहस्य-रूप होने से अथवा भावश्रुतज्ञान- रूप होने से 'श्रुतात्मा' (५६४), तथा तीनों लोकों के समस्त पदार्थों को जानने से 'विष्टरश्रवा' (५६५), हैं। जितेन्द्रिय होने से अथवा सबको शिक्षा देने से 'दान्तात्मा' (५६६), इन्द्रियों के दमन-रूप तीर्थ के स्वामी होने से अथवा योगशास्त्र के स्वामी होने से 'दमतीर्थेश' (५६७), योग स्वरूप होने से 'योगात्मा' (५६८), तथा ज्ञान के द्वारा सब जगह होने से 'ज्ञानसर्वग' (५६९), कहे जाते हैं।

प्रधानमात्मा प्रकृतिः परमः परमोदयः।
प्रक्षीणबन्धः कामारिः क्षेमकृत्क्षेमशासनः।।१०।।

अर्थ– एकाग्रता से आत्मा का ध्यान करने से 'प्रधान' (५७०), ज्ञान-स्वरूप होने से 'आत्मा' (५७१), समवशरण -रूपी उत्कृष्ट लक्ष्मी के स्वामी होने से अथवा धर्मोपदेश' रूप कार्य से प्रशंसनीय होने से अथवा सबके कल्याणकारी होने से 'प्रकृति' (५७२), उत्कृष्ट लक्ष्मी को धारण करने से 'परम' (५७३), तथा परम कल्याणकारी उदय को धारण करने से 'परमोदय' (५७४), हैं। कर्म-बंध सब नष्ट होने से 'प्रक्षीण-बंध' (५७५), कामदेव के परम शत्रु होने से 'कामारि' (५७६), सबका कल्याण करने से 'क्षेमकृत' (५७७), और उपदेश कल्याणकारी होने से 'क्षेमशासन' (५७८), कहलाते हैं।

प्रणवः प्रणयः प्राणः प्राणदः प्रणतेश्वरः।

प्रमाणं प्रणिधिर्दक्षो दक्षिणोऽध्वर्युरध्वरः।।११।।

अर्थ– ओंकार स्वरूप होने से 'प्रणव' (५७९), सबके मित्र होने से 'प्रणय' (५८०), जगत प्रिय होने से अथवा सबके शरणस्थल होने से 'प्राण' (५८१), अतिशय दयालु होकर प्राणदान करने से 'प्राणद' (५८२), तथा प्रणाम करते हुए इन्द्रादिकों के स्वामी अथवा प्रणाम करते हुए भव्यजीवों का पालन- पोषण करने वाले होने से 'प्रणतेश्वर' (५८३), हैं, प्रमाण नय के वक्ता अथवा ज्ञानस्वरूप होने से वा ज्ञान का साधन अथवा लोकप्रमाण वा देह प्रमाण होने से 'प्रमाण' (५८४), योगियों द्वारा गुप्त रीति से चिंतित होने से अथवा सबके मर्मज्ञ होने से 'प्रणिधि' (५८५), मोक्ष प्राप्ति में चतुर कारण होने से 'दक्ष' (५८६), सरलस्वभाव होने से 'दक्षिण'' (५८७), केवलज्ञानरूप यज्ञ को करने से अथवा पापरूप कर्मों का हवन करने से 'अध्वर्यु' (५८८), तथा सन्मार्ग की प्रवृत्ति करने से 'अध्वर' (५८९), हैं।

आनन्दो नन्दनो नन्दो वन्द्योऽनिन्द्योऽभिनन्दनः।
कामहा कामदः काम्यः कामधेनु-रिरिज्जयः।।१२।।

अर्थ– सदा संतुष्ट रहने से 'आनन्द' (५९०), सबको आनन्द देने से 'नन्दन' (५९२), सबके वंद्य अथवा स्तुत्य होने से 'वंद्य' (५९३), अठारह दोषों से रहित होकर सब प्रकार की निंदा के अयोग्य हैं, इसलिए 'अनिंद्य' (५९४), तथा सर्वथा आनंददायक होने से अथवा आपके समवसरण के चारों ओर से वन भयरहित होने से 'अभिनन्दन' (५९५), कहे जाते हैं कामदेव को नाश करने से 'कामहा' (५९६), भक्त भव्य जीवों की इच्छा पूर्ण कर देने से 'कामद' (५९७), अतिशय मनोहर होने से अथवा आपकी प्राप्ति की इच्छा सबको होने से 'काम्य'

समस्त शत्रुओं को जीत लेने से 'अरिंजय' (६००), कहलाते हैं।

इति महामुन्यादिशतम्।।६।। अर्घ्यम्।

असंस्कृतः सुसंस्कारः प्राकृतो वैकृतान्तकृत्।
अन्तकृत्कान्तगुः कान्तश्चिंतामणिरभीष्टदः।।१।।

अर्थ– बिना किसी संस्कार के, स्वभाव से ही सुन्दर होने से 'असंस्कृतसु संस्कार' (६०१), आपका स्वरूप प्रकृति से उत्पन्न नहीं हुआ है, असाधारण वा अद्वितीय है, इसलिए आप 'अप्राकृत' (६०२), तथा राग अथवा विकारों को नाश करने से आप 'वैकृतांतकृत्' (६०३), जन्ममरण रूप संसार को नाश करने से अथवा मोक्ष को सुगम करने से 'अंतकृत्' (६०४), सुन्दर वाणी अथवा सुन्दर प्रभा होने से 'कांतगु' (६०५), शोभायुक्त होने से 'कांत' (६०६), चिंतामणि के समान इच्छित पदार्थों को देने से 'चिंतामणि' (६०७), तथा भव्य जीवों को इष्ट पदार्थों की प्राप्ति कराने से 'अभीष्टद' (६०८), कहे जाते हैं।

अजितो जितकामारि-रमितोऽमितशासनः।
जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितान्तकः।।२।।

अर्थ– काम क्रोधादि योद्धा से जीते नहीं जाते इसलिए 'अजित' (६०९), कामरूप शत्रु को जीतने से 'जितकामारि' (६१०), मर्यादारहित होने से 'अमित' (६११), तथा शासन अपार होने से 'अमितशासन' (६१२), कहलाते हैं। क्रोध को जीत लेने से 'जितक्रोध' (६१३), कर्मरूप शत्रुओं को जीतने से 'जितामित्र' (६१४), समस्त क्लेशों को जीतने से 'जितक्लेश' (६१५), और यम को जीतने से जितांतक' (६१६), कहे जाते हैं।

जिनेन्द्रः परमानन्दो मुनीन्द्रो दुन्दुभिस्वनः।
महेन्द्रवन्द्यो योगीन्द्रो यतीन्द्रो नाभिनन्दनः।।३।।

अर्थ–गणधरादि जिनों के इन्द्र होने से 'जिनेन्द्र' (६१७), उत्कृष्ट आनंद स्वरूप होने से 'परमानन्द' (६१८), मुनियों के इन्द्र होने से 'मुनीन्द्र' (६१९), तथ दुंदुभियों के समान आपकी ध्वनि होने से 'दुंदुभिस्वन' (६२०), हैं महेन्द्र के द्वारा पूज्य होने से 'महेन्द्रवंद्य' (६२१), योगियों के इन्द्र होने से 'योगीन्द्र' (६२२), यतियों के इन्द्र होने से 'यतीन्द्र' (६२३), और महाराज नाभि के पुत्र होने से 'नाभिनन्दन' (६२४), कहलाते हैं।

नाभेयो नाभिजोऽजातः सुव्रतो मनुरुत्तमः।
अभेद्योऽनत्ययोऽनाश्वानधिकोऽधिगुरुः सुगीः।।४।।

अर्थ– नाभि पुत्र होने से 'नाभेय' (६२५), महाराज नाभि के कुल में उत्पन्न होने से 'नाभिज' (६२६), उत्पत्तिरहित होने से 'अजात' (६२७), अहिंसा आदि उत्तम व्रत के धारक होने से 'सुव्रत' (६२८), तथा कर्म भूमि की रचना एवं मोक्षमार्ग का स्वरूप बताने से 'मनु' (६२९) एवं श्रेष्ठ होने से 'उत्तम' (६३०), हैं, दूसरों के द्वारा आपका भेदन सम्भव नहीं इस लिए 'अभेद्य' (६३१), नाशरहित होने से 'अनत्यय' (६३२), अनशन आदि तश्चरण करने से 'अनाश्वान्' (६३३), सबसे अधिक पूज्य होने से 'अधिक' (६३४), सबसे उत्तम उपदेश देने से 'अधिगुरु' (६३५), तथा आपकी दिव्यध्वनि कल्याणकारी होने से 'सुगी' (६३६), कहलाते हैं।

सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो निरुत्सुकः।
विशिष्टः शिष्टभुक् शिष्टः प्रत्ययः कामनोऽनघः।।५।।

अर्थ– सम्यग्ज्ञान होने से 'सुमेधा' (६३७), महापराक्रमी होने से 'विक्रमी' (६३८), सबके स्वामी होने से अथवा सब पदार्थों के यथार्थ ज्ञानी होने से 'स्वामी' (६३९), किसी के द्वारा निवारण नहीं किये जाते, इसलिए 'दुराधर्ष' (६४०), अभिलाषा रहित होने से अथवा स्थिर स्वभाव होने से 'निरुत्सुक' (६४१), विशेष रूप होने से 'विशिष्ट' (६४२), शिष्ट पुरुषों का पालन करने से 'शिष्टभुक्' (६४३), रागद्वेष मोह आदि दोषों से रहित होने से 'शिष्ट' (६४४), विश्वासरूप होने अथवा ज्ञानस्वरूप होने से 'प्रत्यय' (६४५), मनोहर होने से 'कामन' (६४६), और पापरहित होने से 'अनघ' (६४७), के नाम से प्रसिद्ध हैं।

क्षेमी क्षेमंकरोऽक्षय्यः क्षेमधर्मपतिः क्षमी।
अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो ध्यानगम्यो निरुत्तरः।।६।।

अर्थ– मोक्ष प्राप्त होने से 'क्षेमी' (६४८), सबका कल्याण करने से 'क्षेमंकर' (६४९), कभी क्षय नहीं होता इसलिए 'अक्षय्य' (६५०), जीवों के कल्याणकारी जैनधर्म -प्रवर्तक होने से 'क्षेमधर्मपति' (६५१), क्षमावान होने से 'क्षमी' (६५२), इन्द्रियों के द्वारा अग्राह्य होने से अथवा मिथ्यात्वियों द्वारा अग्राह्य होने से 'अग्राह्य' (६५३), निश्चयज्ञान के द्वारा ग्रहण करने योग्य होने से 'ज्ञाननिग्राह्य' (६५४), ध्यान के द्वारा जानने योग्य होने से 'ध्यानगम्य' (६५५), और सबसे उत्कृष्ट होने से 'निरुत्तर' (६५६), कहे जाते हैं।

सुकृती धातुरिज्यार्हः सुनयश्चतुराननः।
श्रीनिवासश्चतुर्वक्त्रश्-चतुरास्यश्चतुर्मुखः।।७।।

अर्थ– पुण्यवान होने से 'सुकृती' (६५७), शब्दों की खानि होने से 'धातु' (६५८), पूजा योग्य होने से 'इज्यार्ह' (६५९), नयों के

अच्छे जानकार होने से 'सुनय' (६६०), तथा एक मुख होकर भी चारों ओर से दर्शन होने से अथवा लोगों को चार मुख दिखने से 'चतुरानन' (६६१), कहे जाते हैं। लक्ष्मी के निवासस्थान होने से 'श्रीनिवास' (६६२), हैं, एक मुख होकर भी चार मुख दिखने से 'चतुर्वक्त्र' (६६३), 'चतुरास्य' (६६४), तथा 'चतुर्मुख' (६६५), कहलाते हैं।

सत्यात्मा सत्यविज्ञानः सत्यवाक्सत्यशासनः।
सत्याशीः सत्यसन्धानः सत्यः सत्यपरायणः।।८।।

अर्थ– सत्यस्वरूप होकर जीवों को कल्याण करने से 'सत्यात्मा' (६६६), विज्ञान सत्य एवं सफल होने से 'सत्यविज्ञान' (६६७), वाणी यथार्थ पदार्थों का निरुपण करने वाली होने से 'सत्यवाक्' (६६८), तथा शासन (मत) यथार्थ एवं साक्षात् मोक्ष प्राप्त करने वाला होने से 'सत्यशासन' (६६९), कहे जाते हैं। दोनों लोकों में फलदायक होने से 'सत्याशी' (६७०), प्रतिज्ञा दृढ़, सत्यस्वरूप रखने से 'सत्यसन्धान्' (६७१), शुद्ध मोक्ष स्वरूप होने से 'सत्य' (६७२), तथा सत्य स्वरूप में तत्पर होने से 'सत्यपरायण' (६७३), कहे जाते हैं।

स्थेयान्स्थवीयान्नेदीया-न्दवीयान् दूरदर्शनः।
अणोरणीया-ननणु-र्गुरुराद्यो गरीयसाम्।।९।।

अर्थ– अत्यन्त स्थिर होने से 'स्थेयान' (६७४), अतिशय स्थूल होने से 'स्थवीयान्' (६७५), भक्तों के समीप होने से 'नेदीयान्' (६७६), पापों से दूर रहने से 'दवीयान' (६७७), तथा आपके दर्शन दूर से ही होने से 'दूरदर्शन' (६७८), कहे जाते हैं। परमाणु से भी 'सूक्ष्म होने से 'अणोरणीयान्' (अणोः अणीयान्) (६७९), सूक्ष्म

न होने से 'अनणु' (६८०), तथा सबसे बड़े होने से 'आद्य गुरु' (६८१), कहलाते हैं।

आचार्य श्री १०८ श्री दीपकसागर जी

सदायोगः सदाभोगः सदातृप्तः सदाशिवः।
सदागतिः सदासौख्यः सदाविद्यः सदोदयः।।१०।।

अर्थ– सदा योगस्वरूप होने से 'सदायोग' (६८२), सदा आनन्द के भोक्ता होने से 'सदाभोग' (६८३), सदा तृप्त रहने से 'सदातृप्त' (६८४), तथा सदा कल्याणस्वरूप मोक्षस्वरूप होने से 'सदाशिव' (६८५), के नाम से पूज्य हैं। सदा गति स्वरूप होने से 'सदागति' (६८६), सदा सुख स्वरूप होने से 'सदासौख्य' (६८७), सदा ज्ञानस्वरूप रहने से 'सदाविद्य' (६८८), और सदा प्रकाशदायक उदयस्वरूप होने से 'सदोदय' (६८९), कहलाते हैं।

सुघोषः सुमुखः सौम्यः सुखदः सुहितः सुहृत्।
सुगुप्तो गुप्तिभृद् गोप्ता लोकाध्यक्षो दमीश्वरः।।११।।

अर्थ– शब्द सुन्दर होने से 'सुघोष' (६९०), सुन्दर मुख के कारण 'सुमुख' (६९१), शांत रहने से 'सौम्य' (६९२), सबको सुख देने से 'सुखद' (६९३), सबका हित करने वाले 'सुहित' (६९४), तथा निष्कपट, शुद्ध निर्मल हृदय के धारी आप सबका हित करने वाले 'सुहृत' (६९५), मिथ्यादृष्टियों को आपका स्वरूप ज्ञात न होने से 'सुगुप्त' (६९६), तीनों गुप्तियों को पालन करने से 'गुप्तिभृत्' (६९७), पापों से आत्मा की एवं जीवों की रक्षा करने से 'गोप्ता' (६९८), तीनों लोकों को प्रत्यक्ष देखने से 'लोकाध्यक्ष' (६९९), और तपश्चरण के द्वारा इन्द्रिय दमन करने से 'दमीश्वर' (७००), कहलाते हैं।

इति असंस्कृतादिशतम्।।७।। अर्घ्यम्।

वृहन्वृहस्पतिर्वाग्मी वाचस्पति-रुदारधीः।
मनीषी धिषणो धीमाञ्-छेमुषीशो गिरांपतिः।।१।।

अर्थ– इन्द्रों के गुरु होने से 'वृहदवृहस्पति' (७०१), विलक्षण वक्ता होने से 'वाग्मी' (७०२), वाणी के स्वामी होने से 'वाचस्पति' (७०३), तथा उदारबुद्धि होने से 'उदारधी' (७०४), कहलाते हैं। बुद्धिमान् होने से 'मनीषी' (७०५), अपार बुद्धिमान् होने से 'धिषण' (७०६), 'धीमान्' (७०७), एंव बुद्धि के स्वामी होने से 'शेमुषीश' (७०८), तथा सब प्रकार की भाषाओं के स्वामी होने से 'गिरांपति' (७०९), के नाम से पुकारे जाते हैं।

नैकरूपो नयोत्तुंगो नैकात्मा नैकधर्मकृत्।
अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा कृतज्ञः कृतलक्षणः।।२।।

अर्थ– अनेकरूप होने से 'नैकरूप' (७१०), नयों का उत्कृष्ट स्वरूप कहने से 'नयोत्तुंग' (७११), अनेक गुणों को धारण करने से 'नैकात्मा' (७१२), तथा पदार्थ का अनेक धर्म बताने से 'नैकधर्मकृत' (७१३), कहे जाते हैं। साधारण पुरुषों के ज्ञानगम्य होने से 'अविज्ञेय' (७१४), आपके स्वरूप में कोई तर्क वितर्क नहीं चल सकता इसलिए 'अप्रतर्क्यात्मा' (७१५), जीवों के समस्त कृत्य जानने से 'कृतज्ञ' (७१६), और समस्त सुलक्षणों से सहित होने से 'कृतलक्षण' (७१७), हैं।

ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भः प्रभास्वरः।
पद्मगर्भो जगद्गर्भो हेमगर्भः सुदर्शनः।।३।।

अर्थ– अंतरंग में ज्ञान होने से 'ज्ञानगर्भ' (७१८), दयालु होने से 'दयागर्भ' (७१९), रत्नत्रय को धारण करने से अथवा गर्भावस्था

में रत्नत्रय का स्वरूप जानने से अथवा गर्भावतार होने से पहले ही रत्नों की वर्षा होने से 'रत्नगर्भ' (७२०), तथा अतिशय प्रभावशाली होने से 'प्रभास्वर' (७२१), कहे जाते हैं। गर्भावस्था में ही लक्ष्मी प्राप्त होने से 'पद्मगर्भ' (७२२), हैं, आपके ज्ञान में समस्त जगत समाहित है इसलिए 'जगद्गर्भ' (७२३), हैं, आत्मा सुवर्ण के समान निर्मल होने से अथवा गर्भावतार के समय सुवर्ण की वर्षा होने के कारण 'हेमगर्भ' (७२४), हैं तथा आपका दर्शन सुन्दर होने के कारण 'सुदर्शन' (७२५), कहलाते हैं।

लक्ष्मीवांस्त्रिदशाध्यक्षो दृढीयानिन ईशिता।
मनोहरो मनोज्ञांगो धीरो गम्भीरशासनः।।४।।

अर्थ– समवसरणादि ऐश्वर्य सहित होने से 'लक्ष्मीवान्' (७२६), देवों को तथा तेरह प्रकार के चारित्र को धारण करने वाले मुनियों को अथवा बाल-युवा वृद्ध तीनों अवस्थाओं में एक-सा प्रत्यक्ष होने से 'त्रिदशाध्यक्ष'; (७२७), अत्यन्त दृढ़ होने से 'दृढ़ीयान्' (७२८), सबके स्वामी होने से 'इन' (७२९), तथा तेजोनिधि अथवा ऐश्वर्यवान् होने के कारण 'ईशिता' (७३०), के नाम से प्रसिद्ध हैं। भव्य जीवों के अन्तः करण को हरण किया इसलिए 'मनोहर' (७३१), अंगोपांग मनोहर होने से 'मनोज्ञांग' (७३२), बुद्धि को प्रेरित कर भव्य जीवों को सुबुद्धि बनाने से 'धीर' (७३३), तथा आपका शासन या शास्त्र गंभीर है इसलिए 'गंभीर शासन' (७३४), नाम के योग्य हैं।

धर्मयूपो दयायागो धर्मनेमिर्मुनीश्वरः।
धर्मचक्रायुधो देवः कर्महा धर्मघोषणः।।५।।

अर्थ– धर्म के स्तम्भ होने से 'धर्मयूप' (७३५), सब जीवों पर

दया करना ही आपका धर्म होने से 'दयायाग' (७३६), धर्मरूप रथ की धुरा होने से 'धर्मनेमि' (७३७), तथा मुनियों के ईश्वर होने से 'मुनीश्वर' (७३८), कहलाते हैं। धर्मचक्र ही आपका आयुध होने से 'धर्मचक्रायुध' (७३९), परमानन्द में क्रीड़ा करने से 'देव' (७४०), शुभाशुभ कर्मों का नाश करने से 'कर्महा'' (७४१), और धर्म का उपदेश देने के हेतु 'धर्मघोषण' (७४२), नाम द्वारा पूजित हैं।

अमोघवागमोघाज्ञो निर्मलोऽमोघशासनः।
सुरूपः सुभगस्त्यागी समयज्ञः समाहितः।।६।।

अर्थ– यथार्थ का बोध कराने वाली वाणी होने से 'अमोघवाक्' (७४३), कभी व्यर्थ न होने वाली आज्ञा के कारण 'अमोघाज्ञ' (७४४), ममत्वरहित होने से 'निर्मल' (७४५), तथा शास्त्र कभी व्यर्थ न होने से अर्थात् जीवों को मोक्ष कराने के कारण 'अमोघशासन' (७४६), कहलाते हैं। स्वरूप आनन्ददायक होने से 'सुरूप' (७४७), ज्ञान का अतिशय माहात्म्य होने के हेतु 'सुभग' (७४८), ज्ञानदान अभयदान आदि के दान से 'त्यागी' (७४९), आत्मा-सिद्धांत तथा काल का स्वरूप जानने से 'समयज्ञ' (७५०), और समाधानरूप होने से अथवा ध्यानरूप होने से 'समाहित' (७५१), कहे जाते हैं।

सुस्थितः स्वास्थ्यभाक्स्वस्थो नीरजस्को निरुद्भवः।
अलेपो निष्कलंकात्मा वीतरागो गतस्पृहः।।७।।

अर्थ– निश्चल अथवा सुख में निमग्न रहने से 'सुस्थित' (७५२), आत्मा की निश्चलता को सेवन करने से 'स्वास्थ्यभाक्' (७५३), सदा आत्मनिष्ठ होने से 'स्वस्थ' (७५४), कर्म-रूप रज

से रहित होने से अथवा ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्म-रहित होने से 'नीरजस्क' (७५५), तथा आपका कोई स्वामी न होने से 'निरुद्धव' (७५६), कहलाते हैं। कर्म के लेप से रहित होने से 'अलेप' (७५७), दोष रहित होने से 'निष्कलंकात्मा' (७५८), रागादि दोषों से रहित होने से 'वीतराग' (७५९), तथा इच्छा-रहित होने से 'गतस्पृह' (७६०), नाम से पूज्य हैं।

वश्येन्द्रियो विमुक्तात्मा निःसपत्नो जितेन्द्रियः।
प्रशान्तोऽनन्तधामर्षिर्मंगलं मलहानघः।।८।।

अर्थ– इन्द्रियों को वश करने से 'वश्येन्द्रिय' (७६१), संसार-रूपी बंधन से रहित होने से 'विमुक्तात्मा' (७६२), दुष्ट भाव से रहित निष्कण्टक होकर 'निःसपत्न' (७६३), तथा इन्द्रियों को जीत कर 'जितेन्द्रिय' (७६४), कहलाये। शान्त अथवा राग-द्वेष रहित होने से 'प्रशांत' (७६५), अनन्त प्रकाश को धारण करते हुए पूज्य होने से 'अनन्तधामर्षि' (७६६), सबको सुख देने से मंगल (७६७), पाप को दूर करने से 'मलहा' (७६८), और पाप रहित होने से 'अनघ' (७६९) कहलाते हैं।

अनीदृगुपमाभूतो दिष्टिर्दैवमगोचरः।
अमूर्तो मूर्तिमानेको नैको नानैकतत्त्वदृक्।।९।।

अर्थ– आपके समान अन्य कोई न होने से 'अनीदृक्' (७७०), सबके लिए उपमायोग्य होने से 'उपमाभूत' (७७१), महाभाग्यशाली अथवा शुभशुभदाता होने से 'दिष्टि' (७७२), प्रबल अथवा स्तुतियोग्य होने से 'दैव' (७७३), तथा इन्द्रियों के एवं वचनों के अगोचर होने के कारण 'अगोचर' (७७४), कहे जाते हैं। शरीर-रहितता के कारण 'अमूर्त' (७७५), एकाकार होने से 'मूर्तिमान' (७७६) हैं।

अद्वितीय होकर मोक्ष प्राप्ति कर लेने से 'एक' (७७७), अनेक रूप-होकर सब भव्य जीवों के सहायक होने से 'नैक' (७७८), और आत्मा के सिवा अन्य तत्त्वों को न देखने से अर्थात् उनमें तल्लीन न होने से 'नानैकतत्त्वदृक्' (७७९) कहलाये हैं।

अध्यात्मगम्यो ऽगम्यात्मा योगविद्योगिवन्दितः।
सर्वत्रगः सदाभावी त्रिकालविषयार्थदृक्।।१०।।

अर्थ– केवल अध्यात्म शास्त्र द्वारा ही जानने योग्य होने के हेतु 'अध्यात्मगम्य' (७८०), संसारी जीवों के जानने योग्य न होने से 'अगम्यात्मा' (७८१), हैं। योग के जानकार होकर 'योगवित्' (७८२), तथा योगियों के द्वारा वन्दना करने योग्य होने के हेतु 'योगिवन्दित' (७८३), कहलाये। ज्ञान के द्वारा सब जगह व्याप्त होने से 'सर्वत्रग' (७८४), सदा विद्यमान रहने से 'सदाभावी' (७८५), और त्रिकाल सम्बन्धी समस्त पदार्थों को देखने से 'त्रिकालविषयार्थदृक्' (७८६), कहलाते हैं।

शंकरः शंवदो दान्तो दमी क्षान्तिपरायणः।
अधिपः परमानन्दः परात्मज्ञः परात्परः।।११।।

अर्थ– सबको सुख देने वाले 'शंकर' (७८७), यथार्थ सुख के अर्थात् मोक्ष रूप सुख के वक्ता 'शंवद' (७८८), मन को वश कर 'दांत' (७८९), इन्द्रियों को निग्रह कर 'दमी' (७९०), तथा क्षमा करने में सदा तत्पर रहने के हेतु 'क्षान्तिपरायण' (७९१), आप ही हैं, जगत् के अधिपति 'अधिप' (७९२), अत्यन्त सुखी होने से 'परमानन्द' (७९३), निज पर के ज्ञाता होने से अथवा विशुद्ध आत्मा का स्वरूप जानने से 'परात्मज्ञ; (७९४), तथा सबसे श्रेष्ठ 'परात्पर' (७९५), आप ही हैं।

त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्यस्त्रिजगन्मङ्गलोदय।
त्रिजगत्पतिपूज्याङ्घ्रस्त्रिलोकाग्रशिखामणिः।।१२।।

अर्थ– तीनों लोकों को प्रिय 'त्रिजगद्वल्लभ' (७९६), सबके पूज्य 'अभ्यर्च्य' (७९७), तथा तीनों लोको में मंगलदाता होकर 'त्रिजगन्मंगलोदय' (७९८), आप ही कहलाये। आपके चरण-कमल तीनों लोकों के इन्द्रों के द्वारा पूज्य होने से 'त्रिजगत्पति पूज्यांघ्रि' (७९९), और तीनों लोकों के शिखर के शिखामणि होने से 'त्रिलोकाग्रशिखामणि' (८००), कहे जाते हैं।

इति वृहदादिशतम्।।८।। अर्घ्यम्।

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढ़व्रतः।
सर्वलोकातिगः पूज्यः सर्वलौकैकसारथिः।।१।।

अर्थ– भूत-भविष्यत वर्तमान तीनों कालों को प्रत्यक्ष देखने से 'त्रिकालदर्शी' (८०१), तीनों लोकों के प्रभु होने से 'लोकेश' (८०२), समस्त प्राणियों के रक्षक के रूप में 'लोकधाता' (८०३), तथा स्वीकृत चारित्र को निश्चल रखने से 'दृढ़व्रत' (८०४), कहलाते हैं। तीनों लोकों के प्राणियों में सर्वोत्कृष्ट होने से 'सर्वलोकातिग' (८०५), पूजा के योग्य होने से 'पूज्य' (८०६), और समस्त प्राणियों के लिए मुख्य रीति से मोक्षमार्ग का स्वरूप दिखलाने से 'सर्वलोकैकसारथि' (८०७) कहे जाते हैं।

पुराणः पुरुषः पूर्वः कृतपूर्वांग विस्तरः।
आदिदेवः पुराणाद्यः पुरुदेवोऽधिदेवता।।२।।

अर्थ– सबसे प्राचीन होकर मुक्तिपर्यन्त शरीर में निवास करने से 'पुराण' (८०८), सबमें बड़े, सबको तृप्त करने वाले अथवा

समवशरण में स्थित रहने से 'पुरुष' (८०९), सबसे पूर्व अर्थात् अग्रेसर होने से 'पूर्व' (८१०), तथा ग्यारह अंग चौदह पूर्व का समस्त विस्तार निरुपण करने से 'कृतपूर्वागविस्तर' (८११), कहे जाते हैं। सब देवों में मुख्य होने से 'आदिदेव' (८१२), सब पुराणों में प्रथम होने से पुराणाद्य' (८१३), इन्द्रादि देवों के द्वारा मुख्यता से आराधित होकर अथवा सबके ईश्वर होकर 'पुरुदेव' (८१४), और देवों के भी देव होने के हेतु 'अधिदेवता' (८१५), कहलाते हैं।

युगमुख्यो युगज्येष्ठो युगादिस्थितिदेशकः।
कल्याणवर्णः कल्याणः कल्यः कल्याणलक्षणः।।३।।

अर्थ– इस अवसर्पिणी काल में मुख्य होने से 'युगमुख्य' (८१६), इसी युग में सबसे बड़े होने से 'युगज्येष्ठ' (८१७), तथा कर्म-भूमि के प्रारम्भ में कर्म-भूमि की स्थिति के मुख्य उपदेशक होने से 'युगादि 'स्थितिदेशक' (८१८), कहलाते हैं। शरीर की कांति सुवर्ण के समान होने से 'कल्याणवर्ण' (८१९), कल्याण-स्वरूप होने से 'कल्याण' (८२०), सबसे कल्याण्कारी 'कल्य' (८२१), तथा मंगल स्वरूप होने से अथवा कल्याण रूप लक्षणों को धारण करने से 'कल्याणलक्षण' (८२२), कहलाते हैं।

कल्याणप्रकृतिर्दीप्त-कल्याणात्मा विकल्मषः।
विकलंकः कलातीतः कलिलघ्नः कलाधरः।।४।।

अर्थ– आप का स्वभाव ही कल्याण-स्वरूप होने से 'कल्याणप्रकृति' (८२३), चारों ओर को प्रकाशमान करता हुआ पुण्य अथवा कल्याण ही आप का स्वरूप है, इसलिए आप 'दीप्तकल्याणात्मा' (८२४), तथा पाप-रहित होने से 'विकल्मष' (८२५), कहलाते हैं। काम आदि कलंक के रहित होने के कारण 'विकलंक' (८२६), शरीर रहित

होने से 'कलातीत' (८२७), पापों का नाश करने वाले हैं, अतएव 'कलिलघ्न' (८२८), और अनेक कलाओं को धारण करने से 'कलाधर' (८२९), कहे जाते हैं।

देवदेवो जगन्नाथो जगद्बन्धुर्जगद्विभुः।
जगद्धितैषी लोकज्ञः सर्वगो जगदग्रजः।।५।।

अर्थ– इन्द्रादि, सब देवों के देव होने से 'देवदेव' (८३०), तीनों लोकों के स्वामी होने से 'जगन्नाथ' (८३१), तीनों लोको के हित करने से 'जगद्बन्धु' (८३२), तथा समस्त जगत् के प्रभु होने से 'जगद्विभु' (८३३), कहलाते हैं। तीनों लोकों के लिए कल्याण करने की इच्छा रखने से 'जगद्धितैषी' (८३४), तीनों लोकों को जानने से 'लोकज्ञ' (८३५), केवलज्ञान द्वारा सब जगह व्याप्त होने से 'सर्वग' (८३६), तथा समस्त जगत् में श्रेष्ठ होने से अथवा जगत् के मुख्य स्थान में उत्पन्न होने से 'जगदग्रज' (८३७), कहे जाते हैं।

चराचरगुरुर्गोप्यो गूढात्मा गूढगोचरः।
सद्योजातः प्रकाशात्मा ज्वलज्ज्वलनसप्रभः।।६।।

अर्थ– त्रस स्थावर आदि सब जीवों के गुरु होने से 'चराचरगुरु' (८३८), हृदय में बड़े यत्न से स्थापन करने के योग्य होने से 'गोप्य' (८३९), आपका स्वरूप अत्यन्त गुप्त होने से 'गूढात्मा' (८४०), तथा गूढ अर्थात् जीवादि पदार्थों को जानने से 'गूढ़गोचर' (८४१), हैं। सदा सर्वदा प्रत्युत उत्पन्न होने के समान दीख पड़ते हैं, अर्थात् सदा नवीन ही जान पड़ते हैं, इसलिए 'सद्योजात' (८४२), प्रकाश स्वरूप होने से 'प्रकाशात्मा' (८४३), और जलती हुई अग्नि के समान देदीप्यमान होने से 'ज्वलज्ज्वलनसप्रभ' (८४४), कहे जाते हैं।

आदित्यवर्णो भर्माभः सुप्रभः कनकप्रभः।
सुवर्णवर्णो रुक्माभः सूर्यकोटिसमप्रभः।।७।।

अर्थ– सूर्य के समान तेजस्वी होने से 'आदित्यवर्ण' (८४५), सुवर्ण के समान कांति युक्त होने से 'भर्माभ' (८४६), आनन्ददायक सुन्दर कान्ति होने से 'सुप्रभ' (८४७), तथा सुवर्ण के समान उज्ज्वल कांति होने से 'कनकप्रभ' (८४८), नाम से प्रसिद्ध हैं। स्वर्ण के सदृश वर्ण होने से 'सुवर्णवर्ण' (८४९), 'रुक्माभ' (८५०), तथा करोड़ों सूर्य के समान प्रभा होने से 'सूर्यकोटिसमप्रभ' (८५१) कहलाते हैं।

तपनीयनिभस्तुंगो बालार्कोभोऽनलप्रभः।
सन्ध्याभ्रवभ्रुर्हेमाभ- स्तप्त चामीकरच्छविः।।८।।

अर्थ– सुवर्ण के समान पीतवर्ण होने से 'तपनीयनिभ' (८५२), ऊंचे शरीर को धारण करने से 'तुंग' (८५३), उदय होते हुए सूर्य के समान कान्तिमान और सुन्दर होने से 'बालार्काभ' (८५४), तथा अग्नि के समान होने से 'अनलप्रभ' (८५५), कहे जाते हैं। सन्ध्या के बादलों के समान सुन्दर होने से 'सन्ध्याभ्रवभ्रु' (८५६), सुवर्ण के समान होने से 'हेमाभ' (८५७), तथा तपाये हुए स्वर्ण के समान कांतियुक्त होने से 'तप्तचामीकरप्रभ' (८५८), कहलाते हैं।

निष्टप्तकनकच्छायः कनत्कांचनसन्निभः।
हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः शातकुम्भनिभप्रभः।।९।।

अर्थ– स्वर्ण के समान उज्ज्वल और कान्तियुक्त होने से 'निष्टप्तकनकच्छाय' (८५९), 'कनत्कांचनसंनिभ' (८६०), 'हिरण्यवर्ण' (८६१), 'स्वर्णाभ' (८६२), तथा 'शातकुम्भनिभप्रभ (८६३), कहे जाते हैं।

द्युम्नाभो जातरूपा भस्तप्त जाम्बूनदद्युतिः।
सुधौतकालधौतश्रीः प्रदीप्तो हाटकद्युतिः।।१०।।

अर्थ– स्वर्ण के समान उज्ज्वल होने से 'द्युम्नाथ' (८६४), 'जातरूपाभ' (८६५), तथा 'तप्तजांबूनदद्युति' (८६६), कहे जाते हैं। तप्त स्वर्ण के समान निर्मल होने से 'सुधौतकलधौतश्री' (८६७), और 'हाटकद्युति' (८६८), तथा देदीप्यमान होने से 'प्रदीप्त' (८६९), कहलाते हैं।

शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः स्पष्टः स्पष्टाक्षरः क्षमः।
शत्रुघ्नोऽप्रतिघोऽमोघः प्रशास्ता शासिता स्वभूः।।११।।

अर्थ– इन्द्रादि उत्तम पुरुषों के प्रिय होने से 'शिष्टेष्ट' (८७०), पुष्टि के दाता होने से 'पुष्टिद' (८७१), महा बलवान होने से 'पुष्ट' (८७२), तथा सबको प्रगट दिखाई देने से 'स्पष्ट' (८७३), हैं। वाणी स्पष्ट तथा आनन्ददायिनी होने से 'स्पष्टाक्षर' (८७४), समर्थ होने से 'क्षम' (८७५), कर्म-रूपी शत्रुओं को नाश करने से -'शत्रुघ्न' (८७६), क्रोध रहित होने से 'अप्रतिघ' (८७७), सफल अर्थात् कृतकृत्य होने से 'अमोघ' (८७८), धर्मोपदेश देने से 'प्रशास्ता' (८७९), रक्षक होने से 'शासिता' (८८०), तथा अपने-आप उत्पन्न होने से 'स्वभू' (८८१), कहलाते हैं।

शान्तिनिष्ठो मुनिज्येष्ठः शिवतातिः शिवप्रदः।
शान्तिदः शान्तिकृच्छान्तिः कान्तिमान्कामितप्रदः।।१२।।

अर्थ– काम, क्रोध आदि को नष्ट करने से अथवा शान्त होने से 'शान्तिनिष्ठ' (८८२), मुनियों में श्रेष्ठ होने से 'मुनिज्येष्ठ' (८८३), सुख की परम्परा होने से 'शिवतति' (८८४), कल्याण के दाता होने से 'शिवप्रद' (८८५), शान्तिदायक होने से 'शान्तिद'

(८८६), समस्त उपद्रवों को शांत करने से 'शान्तिकृत्' (८८७), कर्मों को क्षय करने से 'शांति' (८८८), कान्तियुक्त होने से 'कान्तिमान' (८८९), तथा मनवांछित फलों को देने से 'कामितप्रद' (८९०), कहे जाते हैं।

श्रेयोनिधि-रधिष्ठान-मप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः।
सुस्थिरः स्थावरः स्थाणुः प्रथीयान्प्रथितः पृथुः।।१३।।

अर्थ– कल्याण के समुद्र होने से 'श्रेयोनिधि' (८९१), हैं, धर्म के मूलकारण वा आधार होने से 'अधिष्ठान' (८९२), अपने-आप ही ईश्वर होने से 'अप्रतिष्ठ' (८९३), सब जगह प्रतिष्ठित होने से 'प्रतिष्ठित' (८९४), अतिशय स्थिर होने से 'सुस्थिर' (८९५), विहार-रहित होने से 'स्थावर' (८९६), निश्चल होने से 'स्थाणु' (८९७), विस्तृत होने से 'प्रथीयान्' (८९८), अतिशय प्रसिद्ध होने से 'प्रथित' (८९९), और बहुत बड़े होने से 'पृथु' (९००) कहलाते हैं।

इति त्रिकालदर्श्यादिशतम्।।६।। अर्घ्यम्।

दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रन्थेशो निरम्बरः।
निष्किंचनो निराशंसो ज्ञानचक्षुरमोमुहः।।१।।

अर्थ– दिशा रूप वस्त्रों को धारण करने से 'दिग्वासा' (९०१), वायु-रूपी करधनी को धारण करने से 'वातरशन' (९०२), निर्ग्रन्थ मुनियों में भी श्रेष्ठ होने से 'निर्ग्रंथेश' (९०३), वस्त्र-रहित होने से 'निरम्बर' (९०४), परिग्रह-रहित होने से 'निष्किंचन' (९०५), इच्छा वा आशा रहित होने से 'निराशंस' (९०६), ज्ञान-रूपी नेत्रों को धारण करने से 'ज्ञानचक्षु' (९०७), अत्यन्त निर्मोह होने से

तेजोराशि-रनन्तौजा ज्ञानाब्धिः शीलसागरः।
तेजोमयोऽमितज्योति-र्ज्योतिर्मूर्तिस्तमोपहः।।२।।

अर्थ– तेज के समूह होने से 'तेजोराशि' (९०९), अनन्त पराक्रमी होने से 'अनंतौजा' (९१०), ज्ञान के सागर होने से 'ज्ञानाब्धि' (९११), शील के सागर अथवा स्वभाव के सागर होने से 'शीलसागर' (९१२), तेज स्वरूप होने से 'तेजोमय' (९१३), अनन्त ज्योति को धारण करने से 'अमितज्योति' (९१४), तेजस्वरूप होने से 'ज्योतिमूर्ति' (९१५), तथा अज्ञानरूपी अंधकार के नाशक होने से 'तमोपह' (९१६) कहलाते हैं।

जगच्चूड़ामणिर्दीप्तः शंवान्विघ्नविनायकः।
कलिघ्नः कर्मशत्रुघ्नो लोकालोकप्रकाशकः।।३।।

अर्थ– तीनों लोकों के मस्तक के रत्न होने से 'जगच्चूड़ामणि' (९१७), तेजस्वी अथवा प्रकाशवान होने से 'दीप्त' (९१८), अत्यन्त सुखी होने से 'शंवान' (९१९), विघ्नों को अथवा अन्तराय कर्म को नाश करने से 'विघ्नविनायक' (९२०), दोषों को दूर करने से 'कलिघ्न' (९२१), कर्मरूप शत्रुओं को नाश करने से 'कर्मशत्रुघ्न' (९२२), तथा लोक और अलोक को जानने देखने से 'लोकालोकप्रकाशक' (९२३) कहलाते हैं।

अनिद्रालु- रतन्द्रालुर्जागरूकः प्रभामयः।
लक्ष्मीपतिर्जगज्ज्योति-र्धर्मराजः प्रजाहितः।।४।।

अर्थ– निद्रा रहित होने से 'अनिद्रालु' (९२४), प्रमाद रहित होने से 'अतन्द्रालु' (९२५), अपने स्वरूप की सिद्धि के लिए सदा जाग्रतरूप रहने से 'जागरूक' (९२६), ज्ञानस्वरूप होने से 'प्रभामय'

(९२७), मोक्षरूपी अविनाशी लक्ष्मी के स्वामी होने से 'लक्ष्मीपति' (९२८), जगत को प्रकाश करने से 'जगज्ज्योति' (९२९), धर्म के स्वामी होने से 'धर्मराज' (९३०), धर्म के हितैषी होने से 'प्रजाहित' (९३१) कहलाते हैं।

मुमुक्षुर्बन्धमोक्षज्ञो जिताक्षो जितमन्मथः।
प्रशान्तरसशैलूषो भव्यपेटकनायकः।।५।।

अर्थ– निर्वाण की रुचि स्वरूप होने से 'मुमुक्षु' (९३२), बन्ध और मोक्ष का स्वरूप जानने से 'बन्धमोक्षज्ञ' (९३३), इन्द्रियों को जीतने से 'जिताक्ष' (९३४), कामदेव को जीतने से 'जितमन्मथ' (९३५), शांतरूपी रस का नृत्य करने से 'प्रशान्तरसशैलूष' (९३६), भव्य जीवों के समुदाय के नायक होने से 'भव्यपेटकनायक' (९३७), कहलाते हैं।

मूलकर्ताऽखिलज्योतिर्मलघ्नो मूलकारणः।
आप्तो वागीश्वरः श्रेयांछ्रायसोक्तिर्निरुक्तवाक्।।६।।

अर्थ– धर्म के मुख्य प्रकाशक होने से 'मूलकर्ता' (९३८), अनन्त ज्योतिस्वरूप होने से 'अखिलज्योति' (९३९), राग द्वेष आदि मल को नाश करने से 'मलघ्न' (९४०), मोक्ष के मूल कारण होने से 'मूलकारण' (९४१), यथार्थ वक्ता होने से 'आप्त' (९४२), सब प्रकार की वाणी के स्वामी होने से 'वागीश्वर' (९४३), कल्याणस्वरूप होने ने 'श्रेयान्' (९४४), वाणी कल्याणस्वरूप होने से 'श्रेयांसोक्ति' (९४५), कहलाते हैं तथा निः सन्देह वाणी होने से 'निरुक्तवाक्' (९४६), कहलाते हैं।

प्रवक्ता वचसामीशो मारजिद्विश्वभाववित्।
सुव्रतस्तनुनिर्मुक्तः सुगतो हतदुर्नयः।।७।।

अर्थ– सबसे उत्तम वक्ता होने से 'प्रवक्ता' (९४७), सर्व प्रकार के वचनों के स्वामी होने से 'वचसामीश' (९४८), कामदेव को जीतने से 'मारजित्' (९४९), संसार के समस्त पदार्थों के जानने से अथवा समस्त प्राणियों के अभिप्राय जानने से 'विश्वभाववित्' (९५०), उत्कृष्ट शरीर को धारण करने से 'सुतनु' (९५१), शरीर रहित होने से 'तनुनिर्मुक्त' (९५२), आत्मा में तल्लीन होने से अथवा सम्यग्ज्ञान धारण करने से 'सुगत' (९५३), और मिथ्यादृष्टियों के खोटे नयों का नाश करने से 'हतदुर्नय' (९५४), कहलाते हैं।

श्रीशः श्रीश्रितपादाब्जो वीतभीरभयंकरः।
उत्सन्नदोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोकवत्सलः।।८।।

अर्थ– अंतरंग और बाह्य लक्ष्मी के स्वामी होने से 'श्रीश' (९५५), आप के चरण कमलों की सेवा लक्ष्मी करती है, इसलिए आप 'श्रीश्रितपादाब्ज' (९५६), कहे जाते हैं। भय-रहित होने से 'वीतभी' (९५७), भक्त लोगों का भय दूर करने से 'अभयंकर' (९५८), समस्त दोषों को नष्ट करने से 'उत्सन्नदोष' (९५९), हैं, विघ्न रहित होने से 'निर्विघ्न' (९६०), स्थिर होने से 'निश्चल' (९६१), और लोगों को अत्यन्त प्रिय होने से 'लोकवत्सल' (९६२), कहे जाते हैं।

लोकोत्तरो लोकपतिर्लोकचक्षुरपारधीः।
धीरधीर्बुद्धसन्मार्गः शुद्धः सुनृतपूतवाक्।।९।।

अर्थ– समस्त लोक में उत्कृष्ट होने से 'लोकोत्तर' (९६३), तीनों लोकों के स्वामी होने से 'लोकपति' (९६४), समस्त लोक के यथार्थ पदार्थों के दर्शक होने से 'लोकचक्षु' (९६५), अनन्त ज्ञान को धारण करने से 'अपारधी' (९६६), ज्ञान सदा स्थिर रहने के हेतु 'धीरधी' (९६७), यथार्थ मोक्षमार्ग को जानने से 'बुद्धसन्मार्ग'

(९६८), शुद्ध स्वरूप होने से 'शुद्ध' (९६९), तथा वचन यथार्थ और पवित्र होने से 'सूनृतपूतवाक्' (९७०) कहे जाते हैं।

प्रज्ञापारमितः प्राज्ञो यतिर्निियमितेन्द्रियः।
भदन्तो भद्रकृद्भद्रः कल्पवृक्षो वरप्रदः।।१०।।

अर्थ– बुद्धि के पारगामी होने से 'प्रज्ञापारमित' (९७१), अतिशय बुद्धिमान, होने से 'प्राज्ञ' (९७२), मन को जीतने से अथवा सदा मोक्षमार्ग का प्रयत्न करने से 'यति' (९७३), इन्द्रियों को वश करने से 'नियमितेन्द्रिय' (९७४), पूज्य होने से 'भदन्त' (९७५), कल्याणकारी होने से 'भद्रकृत' (९७६), निष्कपट अथवा कल्याण-स्वरूप होने से 'भद्र' (९७७), इच्छित पदार्थों के दाता होने से 'कल्पवृक्ष' (९७८), तथा इष्ट पदार्थों की प्राप्ति करा देने से 'वरप्रद' (९७९) कहलाते हैं।

समुन्मूलितकर्मारिः कर्मकाष्ठाशुशुक्षणिः।
कर्मण्यः कर्मठः प्रांशु-र्हेयादेयविचक्षणः।।११।।

अर्थ– कर्म-शत्रुओं को उखाड़ कर फेंक देने से 'समुन्मूलितकर्मारि' (९८०), कर्म-रूपी लकड़ी को जलाने के लिए अग्नि के समान होने से 'कर्मकाष्ठ शुशुक्षणि' (९८१), कहलाते हैं। क्रिया अर्थात् चारित्र में नितान्त कुशल होने से 'कर्मण्य' (९८२), क्रिया करने से शूरवीर अथवा सर्वदा तैयार रहने से 'कर्मठ' (९८३), सबसे ऊँचे अर्थात् उत्कृष्ट वा प्रकाशमान होने से 'प्रांशु' (९८४), और छोड़ने योग्य और ग्रहण करने योग्य पदार्थों को जानने में चतुर होने से 'हेयादेयविचक्षण' (९८५), कहलाते हैं।

अनन्तशक्ति-रच्छेद्य-स्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः।
त्रिनेत्रस्त्र्यम्ब कस्त्र्यक्षः केवलज्ञानवीक्षणः।।१२।।

अर्थ– आप में अनन्त शक्तियां प्रगट होने से 'अनन्तशक्ति' (९८६), छिन्न-भिन्न करने योग्य न होने से 'अछेद्य' (९८७), जन्म-जरा मरण इन तीनों को नाश करने से 'त्रिपुरारि' (९८८), कहलाते हैं। भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों कालों के पदार्थों के जानने और देखने से 'त्रिलोचन' (९८९), 'त्रिनेत्र' (९९०), 'त्रयम्बक' (९९१), तथा 'त्रयक्ष' (९९२), कहे जाते हैं और केवलज्ञान ही आपके नेत्र होने से 'केवलज्ञानवीक्षण' (९९३) कहलाते हैं।

समन्तभद्रः शान्तारिर्धर्माचार्यो दयानिधिः।
सूक्ष्मदर्शी जितानंगः कृपालुर्धर्मदेशकः।।१३।।

अर्थ– सर्वथा मंगल-स्वरूप होने से 'समन्तभद्र' (९९४), कर्म-रूप शत्रुओं को शान्त कर देने से 'शान्तारि' (९९५), धर्म के आचार्य होने से 'धर्माचार्य' (९९६), जीवों पर अतिशय दया करने से 'दयानिधि' (९९७), सूक्ष्म पदार्थों को भी साक्षात् देखने से 'सूक्ष्मदर्शी' (९९८), कहलाते हैं। कामदेव को जीतने से 'जितानङ्ग' (९९९), दयावान् होने से 'कृपालु' (१०००), हैं और धर्म का उपदेश देने से 'धर्मदेशक' (१००१) कहे जाते हैं।

शुभंयुः सुखसाद्भूतः पुण्यराशि-रनामयः।
धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्यनायकः।।१४।।

अर्थ– मोक्ष रूप शुभ को प्राप्त करने से 'शुभंयु' (१००२), सुख को अपने आधीन करने से 'सुखसाद्भूत' (१००३), कहलाते हैं। पुण्य की राशि (समूह) होने से 'पुण्य-राशि' (१००४), कहे जाते हैं, रोग रहित होने से 'अनामय' (१००५), कहलाते हैं। धर्म की रक्षा करने से 'धर्मपाल' (१००६), जगत् का पालन करने से 'जगत्पाल' (१००७), हैं और धर्म-रूप साम्राज्य के स्वामी होने से

'धर्मसाम्राज्यनायक' (१००८), कहलाते हैं।

इति दिग्वासाद्यष्टोत्तरशतम्।।१०।। अर्घ्यम्।

धाम्नांपते तवामूनि नामान्यागमकोविदैः।
समुच्चितान्यनुध्याय-न्पुमान्पूतस्मृतिर्भवेत्।।१।।

अर्थ– हे महा तेजस्वी जिनेन्द्रदेव! विद्वान लोगों ने आपके ये एक हजार आठ नाम संचय किये हैं। जो पुरुष इन नामों का ध्यान करता है, उसकी स्मरण शक्ति बहुत ही पवित्र हो जाती है।

गोचरोऽपि गिरामासां त्वमवाग्गोचरो मतः।
स्तोता तथाप्यसंदिग्धं त्वत्तोऽभीष्टफलं भजेत्।।२।।

अर्थ– हे प्रभो! यद्यपि ऊपर लिखे हुए एक हजार आठ नाम रूपी वाणी के द्वारा आप का वर्णन किया गया है। तथापि आप का यथार्थ स्वरूप कोई वर्णन नहीं कर सकता। इसलिए वास्तव में आप वाणी के अगोचर हैं। यद्यपि आप वाणी के अगोचर हैं, तथापि आप की स्तुति करने वाला पुरुष निःसन्देह आप से इष्ट फल की प्राप्ति करता ही है।

त्वमतोऽसि जगद्बन्धु-स्त्वमतोऽसि जगद्भिषक्।
त्वमतोऽसि जगद्धाता त्वमतोऽसि जगद्धितः।।३।।

अर्थ– इसलिए हे प्रभो! इस संसार के आप ही बन्धु हैं आप ही जगत्वैद्य हैं, आप ही जगत् की रक्षा करने वाले हैं, और आप ही संसार का हित करने वाले हैं।

त्वमेकं जगतां ज्योति-स्त्वं द्विरूपोपयोगभाक्।
त्वं त्रिरूपैकमुक्त्यंगः - स्वोत्थानन्तचतुष्टयः।।४।।

अर्थ– जगत् को मुख्य रीति से प्रकाशक होने से आप एक ही हैं दर्शन तथा ज्ञान इन दोनों उपयोगों को धारण करने से दो हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र इन तीनों रत्नत्रय स्वरूप मोक्ष का कारण होने से तीन हैं, आपनी आत्मा में उत्तम अनन्त चतुष्टयों के धारण करने से चार रूप हैं।

त्वं पंचबह्म तत्त्वात्मा पंचकल्याणनायकः।
षड्भेदभावतत्त्वज्ञसत्वं सप्तनयसंग्रहः।।५।।

अर्थ– पंच परमेष्ठी स्वरूप होने से अथवा गर्भावतार आदि पांचों कल्याणों के स्वामी होने से पांच-रूप हैं। जीव, पुदगल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल इन छहों तत्त्वों का यथार्थ-स्वरूप जानने से छः रूप हैं और सातों नयों के समूह- रूप होने से सात-रूप भी कहे जाते हैं।

दिव्याष्टगुणमूर्तिस्त्वं नवकेवललब्धिकः।
दशावतार-निर्धार्यो मां पाहि परमेश्वरः।।६।।

अर्थ– सम्यक्त्व आदि आठ गुण स्वरूप होने से आठ हैं, नौ केवल लब्धियों को धारण करने से नौ हैं और महाबल आदि दस अवतार (पर्याय) धारण करने से दश स्वरूप हैं, अतएव हे परमेश्वर! मेरी रक्षा कीजिए।

युष्मन्नामावली-दृब्ध-विलसत्स्तोत्रमालया।
भवन्तं परिवस्यामः प्रसीदानुगृहाण नः।।७।।

अर्थ– हे प्रभो! हम लोग आपके एक हजार आठ नामों की बनी हुई सुन्दर स्तोत्रों की माला से आपकी आराधना करते हैं, हे देव हम पर प्रसन्न होकर कृपा कीजिये।

इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य पूतो भवति भाक्तिकः।
यः संपाठं पठत्येनं स स्यात्कल्याणभाजनम्।।८।।

अर्थ– जो भगवान् का भक्त पुरुष इस स्तोत्र का स्मरण करता है, वह पवित्र हो जाता है, तथा जो इस स्तोत्र का पाठ पढ़ता है, उसे सब प्रकार के कल्याण प्राप्त होते हैं।

ततः सदेदं पुण्यार्थी पुमान्पठतु पुण्यधीः।
पौरूहूतीं श्रियं प्राप्तुं परमा-मभिलाषुकः।।९।।

अर्थ– इसलिए जो पुरुष इन्द्र की परम विभूति को प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं अथवा जो पुण्य की इच्छा रखते हैं ऐसे सुबुद्धिमान पुरुष को इस स्तोत्र का सदा पाठ करना चाहिए।

स्तुत्वेति मघवा देवं चराचरजगद्गुरुम्।
ततस्तीर्थविहारस्य व्यधात्प्रस्तावनामिमाम्।।१०।।

अर्थ– इस प्रकार इन्द्र ने चर-अचररूप इस जगत के गुरु, देवाधिदेव की स्तुति की, और फिर तीर्थविहार करने के लिए नीचे लिखी हुई प्रार्थना की।

स्तुतिः पुण्यगुणोत्कीर्तिः स्तोता भव्यः प्रसन्नधीः।
निष्ठितार्थो भवांस्तुत्यः फलं नैश्रेयसं सुखम्।।११।।

अर्थ– पवित्र गुणों के प्रशंसापूर्वक कथन करने को स्तुति कहते हैं। प्रसन्न बुद्धिवाला भव्यजीव स्तुति करने वाला होता है, जिसने समस्त पुरुषार्थ समाप्त कर लिये हैं ऐसे आप स्तुत्य हैं और मोक्ष सुख मिलना इस स्तुति का फल है।

यः स्तुत्यो जगतां त्रयस्य न पुनः स्तोता स्वयं कस्यचित्,

ध्येयो योगिजनस्य यश्च नितरां ध्याता स्वयं कस्यचित्।
यो नेतॄन् नयते नमस्कृतिमलं नन्तव्यपक्षेक्षणः,
स श्रीमान् जगतां त्रयस्य च गुरुर्देवः पुरुः पावनः।।१२।।

अर्थ– जो तीनों लोकों के प्राणियों के द्वारा स्तुति किया जाता है, परन्तु स्वतः किसी की स्तुति करने वाला नहीं होता है, योगीजन जिसका ध्यान करते हैं, परन्तु सकल अर्थ प्रत्यक्ष होने से जो स्वयं किसी का ध्यान नहीं करता है। नन्तव्यपक्ष को देखने वाला जो संसार के समस्त श्रेष्ठ पुरुषों को उत्कृष्ट नमस्कार को प्राप्त कराता है, जो अन्तरंग और बहिरंग लक्ष्मी से युक्त हैं, सब में प्रधान हैं और अत्यन्त पवित्र हैं वह देवाधिदेव श्री अरहन्त देव को ही तीन लोक का गुरु समझना चाहिए।

तं देवं त्रिदशाधिपार्चितपदं घातिक्षयानन्तरं,
प्रोत्थानन्तचतुष्टयं जिनमिमं भव्याब्जिनीनामिनम्।
मानस्तम्भविलोकनानत्तजगन्मान्यं त्रिलोकीपतिं,
प्राप्ताचिन्त्यबहिर्विभूतिमनघं भक्त्या प्रवन्दामहे।।१३।।

अर्थ– जिसके चरणों की पूजा इन्द्र करते हैं, चार घातिया कर्मों के नष्ट हो जाने के बाद जिनके अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यस्वरूप चार अनन्त चतुष्टय उत्पन्न हुए हैं, जो भव्यरूपी कमलों को प्रफुल्लित करने वाला है, जो मान स्तम्भ के देखने के लिए नम्रीभूत हुए जगत के द्वारा पूज्य हैं, जिसको अचिंत्य समवसरण आदि बाह्य विभूति प्राप्त हो चुकी है और जो सब प्रकार के पापों से रहित हैं ऐसे तीन लोक के अधीश्वर जिनदेव को हम लोग भक्ति पूर्वक नमस्कार करते हैं।

(पुष्पांजलि क्षिपामि)